प्रस्ताविक

पं० दीपचन्दजी काशलीवाल

प० दीपचन्द जी शाह अठारहवीं शताब्दी के प्रतिभा सम्पन्न विद्वान और कवि थे। आप आध्यात्मिक ग्रंथों के मर्मज्ञ और सांसारिक देह भोगों से उदास रहते थे। आपकी परिणति सरल थी, सभी साधर्मी भाईयों से आपका वात्सल्य था। आपकी जाति खंडेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। आप सागानेर के निवासी थे और बाद को कारण वश जयपुर राज्य की पुरातन राजधानी आमेर में आगये थे, वहीं पर रहते हुए इन्होंने ग्रन्थ रचना की है। इससे और अधिक परिचय आपका प्राप्त नहीं हो सका इसलिये यहां पर उनके मातृ पितृ जीवन शिक्षा, तथा जीवन घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा जासकता।

आप तेरह पथ के अनुयायी थे। यद्यपि उस समय तेरह और बीस पथ में विशेष कशमकश नहीं थी जितनी कि बाद को उसमें खींचातानी हुई, परन्तु दिगम्बर जैन समाज में तेरह-बीस पथ का भेद स० १७७९ से पूर्व का है, उसका निश्चित समय तो अभी अज्ञात है परन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जासकता है कि भट्टारकों की तानाशाही के खिलाफ यह पथ अठारवीं शताब्दी तथा इससे पूर्व ही प्रारम्भ होगया था। और बाद को

वह खूब ही विस्तृत हुआ। इससे सबसे अधिक लाभ तो यह हुआ कि जैन शास्त्रों का अध्ययन एवं पठन पाठन जो एक अर्से से रुकसा गया था पुन चालू होगया। और आज जैन शास्त्रो के मर्मज्ञ जो विद्वान देखने में आरहे है यह सब उसी का प्रतिफल है। इस पथ का श्रेय जयपुर के उन विद्वानों को प्राप्त है जिन्होंने अपनी निस्वार्थ सेवा एवं कर्तव्य निष्ठा द्वारा इसे पल्लवित किया है।

आपकी रचनाओ का अध्ययन करने से यह स्पष्ट मालुम होता है कि आपके हृदय में संसारी जीवों की विपरीताभिनिवेशमय परिणति को देख कर एक प्रकार की टीस थी और वे चाहते थे कि ससार के सभी प्राणी स्त्री-पुत्र-मित्र धन धान्यादि बाह्य पदार्थों में आत्मत्व बुद्धि न करे—उन्हे भ्रमवश अपनी न माने, उन्हे कर्मोदय से प्राप्त समझे, तथा उनमें कर्तृत्व बुद्धि से समुत्पन्न अहकार ममकार रूप परिणति न होने दे। ऐसा करने से ही जीव अपने जीवनको आदर्श,सन्तोषी और सुखी अनुभव कर सकता है इसीसे आपने अपनी आध्यात्मिक गद्य-पद्य रचनाओ में भव्यजीवो को परपदार्थ में आत्मत्व बुद्धि न करने की प्रेरणा की है और उसमे होने वाले दुर्विपाक को भी दिखलाने का प्रयत्न किया है उनकी ऐसी भावना ही उनकी निम्न रचनाओं का प्रधान कारण जान पड़ता है। इसलिये उन्होने अपने ग्रन्थों में उस विषय को बार बार समझाने का प्रयत्न किया है।

रचनाओं का परिचय

इस समय आपकी निम्न रचनाएँ उपलब्ध हैं। अनुभव प्रकाश, आत्मावलोकन, चिद्विलास, परमात्म पुराण, उपदेशरत्न माला और ज्ञान दर्पण। आपकी ये सभी कृतिया आध्यात्मिक रस से ओत प्रोत हैं और उनमें जीवात्मा को आध्यात्मिक दृष्टि के बोध कराने का खासा प्रयत्न किया गया है। इन रचनाओं में ज्ञान दर्पण को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ हिंदी गद्य में हैं जो ढूढारी भाषा को लिये हुए हैं जैसा कि अनुभव प्रकाश के निम्न अश से प्रकट है:—

"महा मुनि जन निरन्तर स्वरूप सेवन करैं हैं तातै अपना त्रैलोक्य पूज्य सबतै उच्च पद अवलोकि कार्य करना है। कर्म-घटा मे मेरा स्वरूप-सूर्य छिप्या है। कछु मेरा-स्वरूप-सूर्य का प्रकाश कर्म-घटा करि हण्या न जाय, आवरया है—ढका हुआ है, घटा का जोर है [सो] मेरे स्वरूप कू हणि न सकै। चेतन तैं अचेतन न करि सकै, मेरी ही भूल भई, स्वपद भूला, भूल मेटि जबही मेरा स्वपद ज्यों का त्यो बना है।"

यह भाषा अठारहवीं सदी के अन्तिम चरण की है, क्यों कि प० दीपचन्दजी ने अपना 'चिद्विलास' नाम का ग्रन्थ वि० स० १७७९ में बनाया है। इससे यह भाषा उस समय की ही हिन्दी गद्य है, बाद को इसमें भी काफी परिवर्तन और विकास हुआ है और उसका विकसित रूप आचार्य कल्प प० टोडर मल जी के

'मोक्षमार्गप्रकाश' आदि ग्रन्थों की भाषा से स्पष्ट है यह भाषा ढूंढारी और व्रज भाषा मिश्रित है, परन्तु यह उस समय बड़ी ही लोकप्रिय समझी जाती थी। आजभी जब हम उसका अध्ययन करते है तब हमे उसकी सरसता और सरलताका पद पदपर अनुभव होताहै। यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थकर्ता की भाषा उतनी परिमार्जित नहीं है जितना कि परिमाजित रूप पडित टोडरमल्लजी और प० जयचन्द्रजी आदि विद्वानों के टीका ग्रन्थो की भाषा में पाया जाता है, फिर भी उसकी लोक प्रियता और माधुर्य में कोई कमी नहीं हुई। इस भाषा का साहित्य जैनियों का ही अधिक जान पड़ता है।

आपकी पद्य रचना भी बड़ी ही सुन्दर और भावपूर्ण है। उसके अवलोकन से आपकी कवित्व शक्ति का सहज ही अनुमान हो जाता है, कविता भी सरल और मनमोहक है। यद्यपि जैन समाज में कविवर बनारसी दास, भगवतीदास, भूधरदास द्यानतराय और दौलतराम आदि हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जिनकी काव्य-कला अनुपम है। उनकी रचनाए हिन्दी साहित्य की अपूर्व देन हैं, वह पढ़ने में सरस और मधुर प्रतीत होती हैं। यद्यपि पंडित दीपचन्द जी शाह की कविता मध्यम दर्जे की है, परन्तु उसमें भी स्वाभाविक सरसता विद्यमान है और वह कवि की आन्तरिक प्रतिभा का प्रतीक है।

पाठको की जानकारी के लिये 'ज्ञानदर्पण' के दो पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

अलख अरूपी अज आतम अमित तेज, एक अविकार सार पद त्रिभुवन में, चिरलों सुभाव जाकौ समै हू सम्हारो नाहि, पर-पद आपो मांनि भम्यो भव वन में। करम कलोलनिमैं मिल्यो है निमक महा, पद पद प्रतिरागी भयो तन तन में, ऐसी चिरकाल की बहु विपति विलाय जाय, नैक हू निहार देखो आप निज धन में ॥ ६७ ॥

निहचैं निहारत ही आतमा अनादि सिद्ध, आप निज भूल ही तैं भयो विवहारी , ज्ञायक सकति यथा विधि सो तो गोप्य दई,प्रगट अज्ञान भाव दशा विसतारी है। अपनों न रूप जानै और ही सौं और मानै,ठानै बहु खेद निज रीति न सभारी है। ऐसे ही अनादि कहो कहा सिद्धि भई, अब नैक हू निहारो निधि चेतना तुम्हारी है।

इन पद्यों में बतलाया है कि "एक आत्मा ही ससार के पदार्थों में सारभूत है, वह अलख है अरूपी, अज और अमित तेजवाला है, परन्तु इस जीव ने कभी भी उस की सभाल नहीं की अतएव पर में अपनी कल्पना कर भव वन में भटकता रहा है। कर्म रूपी कल्लोलों में निश्शक डोलता हुआ पद पद में रागी हुआ है——कर्मोदय से प्राप्त शरीरो में आसक्त रहा है। यदि यह जीव अपने स्वरूप का भान करने लग जाय तो क्षणमात्र मे चिरकाल की बड़ी भारी विपत्ति भी दूर हो सकती है। स्व का अवलोकन करते ही अनादि सिद्ध आत्मा का साक्षात् अनुभव होने लगता है, परन्तु यह जीव अपनी भूल से ही व्यवहारी हुआ है। इसने अपनी ज्ञायक (जानने की) शक्ति को गुप्त कर

अज्ञानावस्था को विस्तृत किया है। यह अपने चैतन्य स्वरूप को नहीं जानता किन्तु अन्य में अन्य की कल्पना करता रहता है। अतएव खेद-खिन्न होता हुआ भी अपनी रीति को नहीं सभालता है। इस तरह करते हुए इस जीव को अनादि काल व्यतीत हो गया, परन्तु स्वात्म लब्धि की प्राप्ति नहीं हुई। कविवर कहते हैं कि हे आत्मन्! तू अब भी पर पदार्थों मे आत्मत्व बुद्धि का परित्याग कर, अपने स्वरूप की ओर देख, अवलोकन करते ही साक्षात चेतना का पिण्ड एक अखड ज्ञान दर्शन स्वरूप आत्मा का अनुभव होगा वही तेरी आत्म निधि है।"

कविवर ने इन पद्यो मे कितना मार्मिक उपदेश दिया है इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं, अध्यात्म के रसिक मुमुक्षु जन उस से भली भाति परिचित हैं। इस तरह सारा ही ग्रन्थ उपदेशात्मक अनेक भावपूर्ण सरस पद्यो से ओत प्रोत है। इस ग्रन्थ का रसास्वादन करते हुए यह पद पद पर अनुभव होता है कि कवि की आन्तरिक भावना कितनी विशुद्ध है और वह आत्म तत्व के अनुभव से विहीन जीवो को उसका सहज ही पथिक बनाने का प्रयत्न करती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम अनुभव प्रकाश है ग्रन्थ का जैसा नाम है उसके अनुसार ही उसमें विषय का विवेचन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है और अनेक दृष्टान्तों द्वारा उसे समझाने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ पहले मुद्रित तो हुआ था, परन्तु उसमें अनेक मोटी मोटी भूलें रह गई थीं जिन्हें नया

मन्दिर धर्मपुरा देहली की दो हस्तलिखित प्रतियो की सहायता से शुद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया गया है। परन्तु खेद है कि वे दोनों प्रतिया भी बहुत कुछ अशुद्धियो को लिये हुए हैं अतएव मै एक शुद्ध प्रति की तलाश में था, परन्तु वह कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकी, और न उनकी दूसरी रचनाये ही मेरे सामने हैं जिन सब का पाठको को परिचय कराया जाय, ऊपर ग्रन्थो के जो नामोल्लेख किये गयेहैं वे अपने जयपुर के पुराने नोटोंके आधारही किये गये हैं। ग्रन्थमें भाषा साहित्यकी दृष्टिसे काफी परिवर्तन एव परिवर्धन की आवश्यकता थी, परन्तु पूर्व कृतिकी सुरक्षाकी दृष्टिसे अपनी ओर से कुछ भी नहीं लिखा गया जो कुछ बनाया या सुधार किया उसे गोल ब्रेकट के भीतर देदिया है, मूल में शुद्ध पाठ रक्खा है और नीचे फुट नोट में उनके अशुद्ध पाठ की सूचना करदी गई है। साथ में संस्कृत प्राकृत पद्यों का भाषानुवाद भी यथा स्थान फुटनोट में देदिया है। और विषय का स्पष्टीकरण करने के लिये तुलनात्मक टिप्पण भी देदिये हैं इस तरह इस सस्करण को उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है वह पाठको को पसन्द आयगा।

आभार

अन्त में मै उन सब सज्जनों का आभार प्रकट करता हूं जिनके सहयोग और प्रेरणा से मै प्रस्तुत ग्रन्थ को इस रूप में पाठकों के समक्ष रख सका हू।

श्रीमान् बा० नेमीचन्दजी पाटनी, जो एक धर्मनिष्ठ परोपकारी सज्जन हैं जिनकी प्रेरणासे मैं इस कार्य में प्रवृत्त हो सका। ला० रतनलालजी मैनेजर शास्त्र भंडार दि० जैन नया मंदिर धर्मपुरा, देहली, जिन्होंने मेरी प्रेरणा को पाकर अनुभव प्रकाश की दोनों हस्त लिखित प्रतियां संशोधनार्थ मेरे पास भेज दीं। स्नेही मित्र पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्य ने समय समय पर अपना परामर्श दिया और प्रस्तुत प्रेस कापी के कुछ भाग को एक बार पढ़ने की कृपा की। उपान्तमें मैं अपनी धर्मपत्नी सौ० इन्दुकुमारी जैन 'हिन्दी रत्न' का नामोल्लेख कर देना उचित समझता हूं जिसने इस ग्रन्थ की प्रेस कापी बड़ी ही सावधानी से तय्यार की है।

ता० १२–८–४६ }

परमानन्द जैन शास्त्री

वीर सेवा मंदिर, सरसावा

प्रकाशकीय

बहुत समय के प्रयास के बाद आज यह ग्रंथ प्रकाश में आने पर परम हर्ष हो रहा है। करीब १२ वर्ष पहिले मेरी स्वर्गीया पूज्य काकीजी साहिबा, धर्मपत्नी रा० ब० सेठ हीरालालजी साहब, को यह ग्रन्थ केकड़ी मे स्वाध्याय के लिये मिला था, वे अध्यात्म ग्रंथों की बड़ी रुचिक थीं। उन्होने मुझे इस ग्रन्थ का परिचय दिया एव प्राप्त करने का आदेश दिया, लेकिन कोशिश करने पर भी जब यह प्राप्त नहीं हो सका तब उन्होने इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने की इच्छा व्यक्त की फलतः यह ग्रन्थ आपके समक्ष प्रस्तुत है, दुःख है कि आज वे इस नश्वर ससार में मौजूद नहीं हैं।

बहुत समय बाद एक बार दि० जैन पुस्तकालय सूरत के सूचीपत्र में गुजराती पुस्तको में अनुभव प्रकाश देखा और मँगवाया तो वही खोजित "**अनुभव - प्रकाश**" गुजराती में अनुवादित होकर श्री जैन स्वाध्याय मदिर सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित हुवा पाया, पढ़ कर बड़ी ही प्रसन्नता हुई और अनुभव हुआ कि हिन्दी से गुजराती में अनुवाद कराकर प्रकाशित कराने वाले अध्यात्म के सच्चे जौंहरी है।

उस गुजराती अनुभव प्रकाश की १ प्रति मैने पूज्य श्री जाति भूषण चौधरी कानमलजी साहब को भेजी, उनको वह बहुत ही रुचिकर हुवा, और उन्होंने ग्रन्थकार के इस एव अन्य

ग्रंथों को भी हिन्दी में प्राप्त करने की पूर्ण चेष्टा की, फल स्वरूप वे जैपुर मे आत्मार्थी शाह दीपचन्दजी काशलीवाल द्वारा रचित तीन ग्रन्थ अनुभव प्रकाश, आत्मावलोकन एव चिद्विलास प्राप्त कर सके, और तीनों की ही प्रतिलिपि कराकर मेरे को दी। उन ग्रन्थों में से अनुभव प्रकाश तो आपके समक्ष प्रस्तुत है, आत्मावलोकन की प्रेस कापी तैयार हो रही है एव चिद्विलास अभी सशोधन में है आशा करता हू जल्दी ही प्रकाशित होगे। उपरोक्त कार्य के लिये हमारे पूज्यवर सबसे ज्यादा धन्यवाद के पात्र है।

प्रमुख साहब श्री जैन स्वाध्याय मदिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने संशोधित मुद्रित प्रति भेजने की कृपा की इसके लिये हम उनके आभारी है।

प्रेस कापी कराने एव सपादन का भार श्रीयुत् प० परमानन्दजी साहब शास्त्री सरसावा को सौंपा गया जिसको उन्होने मेहनत से पूर्ण किया एव खोज पूर्ण प्रस्तावना भी लिख कर भेजी। प्रेस कापी मे Proposition एव स्पष्टीकरण सबधी कई त्रुटिया रह जाने से ६४ पेज छपजाने पर बीच मे ही छपाई का काम रोकना पडा और ६४ पेज से आगे की सारी प्रेस कापी मे प० श्रेयासकुमारजी शास्त्री ने मेरे साथ बैठकर सशोधन किया एव उक्त पंडितजी ने ही प्रेस मैनेजर के बीमार हो जाने से प्रूफ रीडिंग वगैरह भी किया। उक्त संपादनादि कार्य के लिये उभय विद्वानों को सहृदय धन्यवाद है।

श्रीयुत शाह दीपचन्दजी साहब की भाषा बहुत असंशोधित होने के कारण मूलपाठ को जैसा का तैसा सुरक्षित रखते हुवे यथा स्थान शब्दो की कमी पूर्ति एवं अस्पष्ट शब्दो का स्पष्टीकरण कोष्टकों मे दे दिया गया है जिससे पाठकों को समझने मे सुगमता हो।

मेरी स्वर्गीया पूज्य काकीजी साहिबा का मेरे पर परम उपकार है कि जिन्होने ऐसे अपूर्व ग्रन्थ का परिचय दिया, जिसके ही कारण मुझे अध्यात्मधाम सोनगढ़ का परिचय प्राप्त हुआ, जहा आकर मैने पूज्य आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी महाराज के प्रवचनो द्वारा अपने आत्मीय जीवन मे नवीनता, सच्चा पुरुषार्थ एवं सत्य मार्ग प्राप्त किया।

आजकल कागज की कमी आदि कठिनाइयो से ग्रन्थ को विशेष आकर्षक न बना सके इसके लिये क्षमा याचना है। मेरे पुष्पाजलि व्रतोद्यापन के उपलक्ष मे यह ग्रथ आपके समक्ष भेट है।

भवदीय –

नेमीचन्द पाटनी

डाइरेक्टर आफ मैनेजिंग एजेन्ट

दी महाराजा किशनगढ़ मिल्स लि०

किशनगढ़।

मेरे दो शब्द

यह अनुभव-प्रकाश ग्रन्थ अपने नाम से ही अपने गुणोंको प्रकट कर रहा है अनुभव से ही अन्तरंग आत्मा में अलौकिक प्रकाश होता है इस लिये जो सज्जन इस ग्रन्थ की स्वाध्याय करें वे केवल शब्द सौन्दर्य पर ही लक्ष्य नहीं रक्खें, शब्द से अन्त-रंग में अर्थ पर ध्यान दे तथा अर्थ से उसके साकार और निराकार ज्ञान पर लक्ष्य देवें जिससे वास्तविक वचनातीत आनन्द की प्राप्ति होगी।

मैने भी इस ग्रन्थ से इसी क्रम से अपने अनुभव में अद्वितीय लाभ उठाया है और इसी उपकार निमित्त स्वर्गीय साधर्मी साह दीपचन्द्रजी काशलीवाल द्वारा कृत मजी हुई रचनाओं में से इस एक रचना के ध्यान एव गभीर मनन पूर्वक पढ़ने के लिये आप सज्जनो से भी आग्रह करता हूँ।

निश्चय से इन्होने अपनी बहुतसी ग्रन्थ रचनाओ में आत्मा का प्रकाश शब्दो द्वारा अनुपम रूपसे दिखलाया है उनमे से २ ग्रथ १ आत्मावलोकन तथा २ चिद्विलास हमे और उपलब्ध हो गये है और उनको भी हम शीघ्र प्रकाशित कराने का प्रयत्न कर रहे हैं आशा है वे भी अपनी अनुपम छटा लेकर आपके अनुभव वृद्धि मे सहायक होगे।

विनीत —

चौधरी कानमल

मारोठ निवासी

हाल अजमेर
ता० १-१-४७

ॐ

* श्री समन्तभद्राय नमः *

श्री पं० दीपचन्दजी शाह (काशलीवाल) कृत

अनुभव प्रकाश

मङ्गलाचरण

गुण अनन्तमय परमपद, श्री जिनवर भगवान् ।

ज्ञेय लखतं[1] है ज्ञानमे, अचल सदा निज थानं[2] ॥ १ ॥

परमदेवाधिदेव परमात्मा परमेश्वर परम पूज्य अमल अनुपम आनन्दमय अखण्डित भगवान निर्वाणनाथ कों नमस्कार करि अनुभवं[3] प्रकाश ग्रन्थ करौं हौं, जिनके प्रसादतैं पदार्थका स्वरूप जानि निज आनन्द उपजै ।

प्रथम यह लोक षड्द्रव्य का बन्या है। तामें पञ्चद्रव्यसौं भिन्न सहज स्वभाव सत्-चिद्-

१ मु० लक्ष्य। २ मु० प्रति में 'जिनथान' के स्थान में 'निजस्थान' कर दिया है जिससे छन्द भङ्ग हो जाता है। ३ क अनुभौ।

आनन्दादि-अनन्त[1] गुणमय चिदानन्द है। अनादि कर्मसंजोगतैं अनादि अशुद्ध होय रह्या है। तातें पर पदमें आपा मानि परभाव किये, तातैं जन्मादि दुःख सहे हैं। ऐसी दुःखपरपाटी अपने अशुद्ध चिन्तवन तैं पाई है। जो अपने स्वरूपकी संभार करै तो एक छिन में सब दुःख विलय (विनश) जाय। जैसा कछु सासता (शाश्वत) आनन्द मय परम पद है, ताकौ पावै, ताकी संभार के करत ही स्वरूप प्राप्ति होय है, यह उपाय दिखाइये है। ये ही परिणाम उलटि परमें आपा मानि स्वरूपका विस्मरण करि रह्या है। येही परिणाम सुलटि स्वरूपकौ आपा मानि परका विस्मरण करै, तौ मुकति (मुक्ति) कामिनीका कंत (कन्थ) होवे।

ऐसे परिणाम में कछु कलेश तौ नाहीं। ये परिणाम क्यों न करै[2]? ताका समाधान-अनादि अविद्यामें पड़्या है। मोहकी गांठि निबड़ पड़ी है। आत्मा और परका एकत्व सन्धान होय रह्या है। जैसें कोई पुरुष अफीम के अमल कौ चढ़्या है, वह दुःख पावै है, परि छूटि न सकै, काहेतें बहुत

---

१ मु० सच्चिदानन्दाद्यनन्त। २ मु० कौन।

चढ़्या है ? छूटैं सुख है, कलेश नाहीं, परि वाइडि सौं (वाय व वात रोग होने से) ले ही ले । तैसैं पर मोह सौं बंध्या है, छूटैं सुख है, परि न छूटे है, अनादि संयोग छूटे तैं सुख हो है, परि झूठे ही दुःख माने है । याके मेटवे कौं प्रज्ञाछैनी आत्मा के परके एकत्वसन्धानमें डारै, चेतना अंश अंश अपना जानै, जामैं जड़ (का) प्रवेश नांही। कैसे जानै ? सो कहिये है—

यह परमैं आपा जानै है, सो यह जान (जानना) निज बानिगी है । इस निज (ज्ञान) बानिगी कौं बहुत संत पिछानि पिछानि अजर अमर भये, सो कहने मात्र ही न ल्यावै, चित्तको चेतनामें लीन करै, स्वरूप अनुभवका विलास सुखनिवास है, ताकौं करे, सो कैसैं करै सो कहिये है—

निरन्तर अपने स्वरूपकी भावनामैं मग्न रहै, दर्शन ज्ञान चेतनाका प्रकाश उपयोग द्वार मैं दृढ़ भावै । चिदपरिणतितैं स्वरूप रस होय है । द्रव्य गुण पर्यायका यथार्थ अनुभवना अनुभव है । अनुभवतैं पंच परमगुरू भये व होंहिंगे, (सो) प्रसाद अनुभवका है । अनुभव आचरणकौं

अरिहंत सिद्ध सेवैं हैं। अनुभव[1] में अनन्तगुण के सब रस आवैं हैं सो कहिये है।

ज्ञान का प्रकट प्रकास अनन्त गुण कौं[2] परिणति परणवै, वेदै, आस्वाद करै। तहां अनुपम आनन्द फल निपजै ऐसे ही दरसन कौं परिणति परणवै, वेदै, आस्वाद करै सुखफल निपजै। याही रीति सब गुणकौं परणवै, वेदै, आस्वादै, आनन्द अनन्त अखण्डित अनुपम रस लियें उपजै। तातैं सब गुण का रस परणतिके द्वार अनुभव करवैमैं आया। ऐसैं ही द्रव्यकौं परणवै, वेदै, आस्वादै आनन्द पावै। तब परिणति द्वार द्रव्य अनुभव न भया। अनुभव प्रकासैं[3] गुण परिणति एक रस भये होय है। वस्तुका स्वरूप है। सो गुणचेतना का संक्षेपमात्र वर्णन कीजिये है।

सकल गुणनमें ज्ञान प्रधान है। काहेतैं? ज्ञान विशेष चेतना है। ज्ञान सबका ज्ञाता है। सूक्ष्म न

---

१ गुण अनन्तके रस सबै, अनुभौ रसके मांहि। यातैं अनुभौ सारिखो, और दूसरो नांहि ॥ १५३ ॥ पच परम गुरु जे भये जे होंगे जगमाहि। ते अनुभौ परसादतैं, यामें धोखो नाहि ॥ १५४ ॥—ज्ञान दर्पण।

२ ख और मु० प्रति में 'गुणकौं' वाक्य के पश्चात् 'जाने ज्ञान विशेष गुणकौं' इतना पाठ अधिक पाया जाता है। ३ मु०, ख 'का रस' पाठ पाया जाता है।

होता तौ इन्द्रिय ग्राह्य होता, तातैं सूक्ष्म करि ज्ञान की सिद्धि, सत्ता गुण विना सूक्ष्म सासता न होता। वीर्यगुण विना सत्ताकी निष्पत्ति सामर्थ्य कहां पाइये? अगुरुलघु विना वीर्य हलका भारी भये जड़ता कौं धरता। प्रमेय गुण विना अगुरुलघुका प्रमाण कहां पाइये? अप्रमाण भए कौन कौन मानता? वस्तुत्व विना प्रमाण किसका कहिये? अस्तित्व विना वस्तुत्व किसके आधार कहिये? प्रदेशवत्व विना अस्तित्व किसका निरूपिये? प्रभुत्व विना प्रदेश-प्रभुता कहांतैं रहती? विभुत्व विना प्रभुत्व सबमैं कैसै व्यापता? जीवत्व विना विभुत्व अजीव होता, चेतना विना जीवत्व कहां वर्तना? ज्ञान विना चेतन का विशेष जान्या न परता, दर्शन विना सामान्य विशेष ज्ञान न रहता, सर्वज्ञता विना दर्शनकौं न जानता? सर्वदर्शित्व विना ज्ञानकौं न देखता? चारित्र चेतना विना दर्शन ज्ञान की थिरता कहां रहती? परिणामात्मकत्व विना चिदचिद्विलास कहां तैं करता? अकारणकार्यत्व विना परकार्य भये, निजकार्य कौ अभाव होता। असंकुचितत्व बिना अविनाशी चेतना विलास संकोच न आवता। त्यागोपादान शून्यत्व बिना ग्रहण त्याग लग्या रहता। अक-

तृत्व विना कर्मका कर्ता होता। अभोक्तृत्व बिना परभाव भोगवता। असाधारण विना चेतनाचेतनका भेद न परता। साधारण बिना कोई पदारथ सत् होता, कोई असत् होता। तत्त्व विना वस्तु स्वरूप न धरता। अतत्व विना परका तत्व आवता। भाव विना स्वभाव का अभाव होता। भाव भाव विना अतीत का भाव अनागत मैं न रहता। भावाभाव बिना परिणमन समय मात्र न संभवता। अभाव भाव विना अनागत परिणमन न आवता। अभाव विना कर्म का सद्भाव जान्या परता। सर्वथा[1] अभाव अभाव विना अतीत मैं कर्म का अभाव था, सो अनागत अभाव मैं ऐसा न होता। कर्ता विना निज कर्म का कर्ता न होता। कर्म विना स्वभाव कर्म का अभाव होता। करण विना परिणमन करि स्वरूप का साधन था सो न होता। सम्प्रदान बिना परिणति स्वरूप मैं आप समर्पण न करता। अपादान विना आपतैं आप करि आप न होता। अधिकरण विना सब का आधार न होता। स्वयंसिद्ध विना पराधीनता आवती। अज विना उपजता। अखण्ड विना खण्डितता पावता।

---

१ क मु० प्रति में 'सर्वथा' पाठ नहीं है।

विमल विना मल होता। एक विना अनेक होता। अनेक विना गुण अनेक का अभाव होता। नित्य विना अनित्य होना। अनित्य बिना षड्गुणी वृद्धि हानि न होय। जब (वृद्धि हानि न होय तब) अर्थ क्रियाकारक स्वभाव की सिद्धि न होय। भेद बिना अभेद द्रव्य गुण होय। अभेद बिना एक वस्तु न होय। अस्ति विना नास्ति होय। नास्ति बिना परकी अस्तिता होय। साकार बिना निजाकृति न होय। निराकार बिना पराकार धरि विनाश पावै। अचल स्वभाव बिना चल होय। ऊर्ध्व गमन स्वभाव बिना उच्च पद न जान्यौं परै। इत्यादि अनन्त विशेषण ज्ञानी अनुभव करै। सो निज जानि कैसे होय? सो कहिये है—

प्रथम, अनादि परमैं अहं ममरूप मिथ्यात्व[1] का नाश करै। पीछे, पर-राग रूप भाव विध्वंस करै। जब पर-राग मिटै तब वीतराग होय। जब पर प्रवेश का अभाव भाव भया, तब स्वसंवेदरूप निज ज्ञान होय। अथवा अपने द्रव्य गुण पर्याय का विचार करि निज पद जानै। अथवा उपयोग मैं ज्ञान[2] रूप वस्तुकौं जानै। अनन्त महिमा भण्डार सार अविकार अपार शक्ति मण्डित

---

१ क, मु० 'मिथ्या'। २ मु० 'जान'।

मेरा स्वरूप है[1], ऐसा भाव प्रतीति करि करै। ध्यान धरै निश्चल होय यह जानि जानै। निज-रूप जानि ही कौं अनूप पदका सर्वस्व जानै। इस स्वरूप की जानि बिना पर की मानि करि संसारी दुखी भये। सो परकी मानि कैसैं मिटै ? सो कहिये हैः—

भेदज्ञानतैं पर-निजका अंश[2] न्यारा न्यारा जानैं। मैं उपयोगी, मेरा उपयोगित्व ग्रन्थ गावैं हैं। मै देखा, जानौं हौं। यह निश्चय ठीक किये आनन्द बढ़ै। पर-परिणति मेरी करी है। न करौं तौ न होय मानि. मेरी परमें मैं करी मानि, अब मैं निजमें मानौं, तौ मानत प्रमाण ही मुक्ति तैं (की) याही सगाई भई, अवश्य वर होगा। करम के भरम कौ विनाश निज शरम पाये होय है। सो निज शरम कैसे पाइये[3] ? सो कहिये हैः—

मेरा अनन्त सुख मेरे उपयोगमै है। सो मेरा उपयोग तौ सदा मैं धरौं हौ। मै उपयोग कौ भूलि अनुपयोग में अनादि रत भया. सुख स्थानक चेतना उपयोग भूल्या, सुख कहां तै होय ? अब मैं साक्षात् उपयोग प्रकाश ठावा

---

१ मु० प्रति में यह पाठ नहीं है। २ प्राप्त प्रतियोंमें 'अश अश' पाठ पाया जाता है। ३ क, प्रति में यह पाठ नहीं है।

(योग्य स्थान) किया। काहे तैं? अहं नर ऐसी मानि, नर शरीर जड़ मैं तौ न होय, मेरे उपयोग नैं भई है। सो ऐसी मानिका करणहार मेरा उपयोग अशुद्ध स्वांग धरि बैठा है। जेसै कोई एक नटवा बरद (बलद बैल) का स्वांग ल्याया है, पूछै है, पर में आपा भूल्या है, परमें आपा जान्या है, अब[1] मैं नरकी परजाय कब पावौंगा? झूठैं ही पूछे है, नर ही है। भूलि तैं यह रीति भई है। तैसैं चिदानन्द आपा भूल्या है, परमैं आपा जान्या है, अपनी आप भूलि मेट, सदा उपयोग धारी आनन्द रूप आप स्वयमेव ही बन्याहै। बिना यत्न, तातैं निज निहारना ही कार्य है। निज श्रद्धा आये निज अवलोकन होय है। यह श्रद्धा काहेतैं होय है? सो कहिये है:—

प्रथम सकल लौकिक रीति तैं पराङ्मुख होय, निज विचार सन्मुख होय, कर्म-कन्दरा विषैं छिप्या है, चिदानन्दराजा[2]। कर्म-कन्दरा तीन हैं[3]। नोकर्म प्रथम गुफा, दूजी द्रव्य-कर्म गुफा, तीजी भाव-कर्म गुफा। प्रथम, नोकर्म गुफामैं परणति पैठी कि हमारा राजा दिखै, तहां उसको कछु न

---

१ मु० प्रति में यह पाठ नहीं है। २ यह मु० प्रति का पाठ है। ३ क० ख० प्रति में 'निजराजा' पाठ दिया है।

दीसै, चकित होय रही, तब फिरिनै लगी, " तब श्रीगुरूनै कह्या कि, तूं कहा ढूंढै है? तब वह कहने लगी, मेरे राजाकौं देखौं हौं सो न पायां[१]। तब श्रीगुरूनैं कह्या तेरा राजा यहां ही है, मति फिरै, यहां तैं तीसरी गुफा है, तहां वसै है। ताकै हाथ की डोरी इस गुफा तक आई है। सो यह डोरी उसके हाथकी हलाई हालै है। जो वह न होय तो डोरी आपसैं न हालै है। तातैं विचारि इस शक्ति या डोरीकी अनसूत (सीधमें) चली जाना। कर्ममैं देखि इसकी क्रिया डोरीकौं कौन हलावै है? द्रव्यकर्म गुफा अंदरि प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग वाहीके निमित्ततैं नाव पऱ्या है। वाकी परिणति भई जैसी जैसी वर्गणा बंधी, वहां भी उसकी बणाई सत्तासौं द्रव्य कर्म नाव पड़्या, व उसके भावौं के निमित्त तैं नानाकर्म पुद्गल नैं नाम पाया। भाव कर्म गुफा मैं राग द्वेष मोहका प्रकाश मैं छिप्या स्वरूप रहै है। वह प्रकाश तेरे नाथका अशुद्ध स्वांग है। तामैं तू खोजि, भय मति कर निःशङ्क जायहु, यह राग द्वेष मोह की डोरी के साथ जाय खोजि, जिस प्रदेश तैं उठी सो ही तेरा नाथ है। डोरी कौ मति देखै। जिसके हाथमें

१ यह वाक्य क० ख० प्रतियों में नहीं है।

डोरी तिसकौ लागि, तुरत मिलैगा। अपनी ज्ञान महिमाकों छिपाय बैठा है। तू पिछानि, यह गुप्त ज्ञान भया तौऊ नाथ छिप्या नहीं। चेतना प्रकाशरूप चिदानन्द राजा पाय सुख पावैगी। निज शर्म का उपाय कह्या। यह निज सुख तौ निज उपयोगमें कह्या। दुर्लभ क्यौ भया है? सो कहिये हैः—

यह परिणाम भूमिका मैं मोह मदिरा पीय अविवेक मल्ल उन्मत्त होय विवेक मल्लकौ जीति जयथंभ रोपि ठाढ़ा (खड़ा) भया है जोरावर। तातै आपकी सुखनिधिका विलास न करणै दे। विवेक मल्ल का जोर भये अविवेक हण्या जाय। तब निज निधि विलसिये। पर-रुचि खोटा आहार सेवनतै मिथ्याज्वर भया। तब विवेक निर्बल भया। तातै स्वआचार पारा श्रद्धा बूटी के पुटसौं सुधर्‍या, ताका सेवन करै, तब विवेक मल्ल मिथ्याज्वर मेटि सबल होय अविवेककौ पछारै। तब आनन्द निधि का विलास होय। स्वआचार कह्या। श्रद्धा कैसै होय? सो कहिये है—

इस अनादि संसार मैं पर विचार अनादि किया। मेरी ज्ञान चेतना अशुद्ध भई। अब स्वआचार पारा सेवन करिये तौ, अविनाशी पद

भेंटिये। मैं कौन हौ ? मेरा स्वरूप कहा ? कैसैं पाईये ? प्रथम पद अपनेका उपयोग प्रकाश है। दर्शन ज्ञान उपयोग चारित्र उपयोग। दर्शन देखना है, ज्ञान जानना है, चारित्र परिणाम करि आचरिता है। ऐसा ज्ञेय का देखना जानना आचरणा अनादि किया अपने विशुद्ध पदमै उपयोग न दिया। अतींद्रिय सुख के लाभ बिना रीता रह्या। अनन्ते तीर्थङ्कर भये तिनहू ने स्वरूप शुद्ध किया, अनन्त सुखी भये। अब मोकौं भी ऐसे ही स्वरूप शुद्ध करना है।

महामुनिजन निरंतर स्वरूपसेवन करै हैं। तातै अपना त्रैलोक्य पूज्य सबतै उच्चपद अवलोकि कार्य करना है। कर्म-घटामैं मेरा स्वरूप-सूर्य छिप्या है कछु मेरे स्वरूप-सूर्यका प्रकाश कर्म-घटाकरि हण्या न जाय, आवर्‍या है (ढका हुआ है)। घटाका जोर है (मो) मेरे स्वरूपकूं हणि न सकै। चेतनतै अचेतन न करि सकै। मेरी ही भूलि भई। स्वपद भूल्या भूलि मेटी जबही मेरा स्वपद ज्यौंका त्यौं बन्याहै।

जैसै को[१] रत्नद्वीपका नर था। तहां रत्न के मन्दिर थे। रत्न समूहमै रहै था। परखं न

१ परीक्षा, जांचना, अथवा गुण और दोष की ठीक ठीक निर्णायक दृष्टि।

जानै था। और देश मै आया, कणगती (कमर मै बांधने का कटिसूत्र या करधनी) मै हरिन्मणि लगी थी। एक दिन सरोवर स्नान कौं[1] गया। जौंहरी नें देख्या। हन्या पाणी इसकी मणिप्रभा तैं सरोवर का भया। तब उस पासि एक नग ले राजा समीप उस नर कौं लेगया। एक नगके मोल सौं कोडि मंदिर भरै एती दीनार दिवाई। तब वह नर पछताया। मेरा निधान मैं न पिछान्या। तैसैं अपना निधान आप समीप है। पिछानत ही सुख होय है। मेरा आत्मा ज्ञान दर्शन का धारी चिदानन्द है। मेरा स्वरूप अनन्त चैतन्यशक्ति करि मण्डित अनन्त गुणमय है। मेरे उपयोग के आधीन बण्या है। मैं मेरे परिणाम उपयोग मेरे स्वरूपमैं धरूँगा। अनादि दुःख मेटूंगा। परमपद भेटूंगा। यह सुगम राह स्वरूप पावनेका है। दृष्टि के गोचर करना ही दुर्लभ है। सो सन्तों ने सुगम कर दिया है। उनके प्रसादतैं हमों ने पाया है॥

सो हमारा अखण्ड विलास सुख निवास

---

१ ख० प्रति में यह पाठ निम्न रूप में दिया है "सो एक दिन सरोवर को पाणी पीवन कौं गयौ, तब उस नर कौं जौंहरी ने देखा, पाणी हरा भया भाव जाण्या याके पास नग है, तब जौंहरी ने पिछाण्या यह परख न जानै है।"

इस अनुभव प्रकाशमैं है। वचनगोचर नाहीं, भावनागम्य है। यह मेरा ज्योतिःस्वरूप का प्रकाश मैं हौं, प्रगट इस घट मै प्रकाशता है, सो देखना है। छिप्या नाहीं, गोप्य कैसै मानौ? छती वस्तु कौं अनछुती कैसै करां? छती अनछुती न होती है। पीछे झूठै ही छती कौं अनछती मानी थी। तिसका अनादि दुःख फल भया था। शरीर कौ आपा कैसै मानिये? यह तो रक्त वीर्य तै भया, सात धात जड, विजातीय विनश्वर पर [है] सो मेरी चेतना यह नाहीं। ज्ञानावर्ण वर्गणा विजातीय स्वरूप कौ [धरै है] आवर्ण, अचेतन, बंधक, विनश्वर, रसविपाक हीन है, सो मेरी नाहीं विभाव स्वभाव मलिन करै, कर्म उदयतैं भया, मेरा नाहीं। मेरा चेतनापद मै पाया। ज्ञान लक्षणतै लक्ष्य पिछानि स्वरूप श्रद्धानै आनन्दकन्द की केली करि सुखी हो। सो आनन्दकन्द की केली स्वरूप श्रद्धातै कैसें होय? सो कहिये है:—

अनन्त चैतन्य चिन्हकौ लिये अखण्डित गुण पुंज पर्याय का धारी द्रव्य ज्ञानादिगुणपरिणति पर्यायअवस्थारूप वस्तुका निश्चय भया॥

ज्ञान जानने मात्र, दर्शन देखवे मात्र, सत्ता

---

१ यह वाक्य 'ख' प्रति में नहीं है।

अस्ति मात्र, वीर्य वस्तु निष्पन्न सामर्थ्य मात्र, केवल ऐसा प्रतीत्य भाव रुचि भाव की आस्तिक्यता श्रद्धान श्रद्धा कहिये। तिसनै उपजी आनन्द कन्द मै केली करि सुखी हो। जान्या आनंद ज्ञानानन्द, स्वरूप देखै आनन्द सो दर्शनानन्द, परिणया आनन्द चारित्रानन्द। ऐसै सब गुणानंद तिसका मूल निजस्वरूप आनन्द कन्द। तिसकी केलि स्वरूप मै परिणति रमावणी। तिसतै सुख समूह भया है। और इस तै ऊंचा उपाय नाहीं। भव्यनकौ शिवराह सोहली (सहज) यह भगवंत नै बताई है। भगवन्त की भावना तैं सन्त महन्त भये। मैं भी याही भावनाका अवगाढ़ थंभ रोप्या है। सम्यग्दृष्टीकै ऐसा निरन्तर अभ्यास रहै। कर्म अभावतैं[1] ज्ञान स्वरसमण्डित सुखका पुंज प्रगटै तब कृतकृत्य होय है। इस आतमका स्वरूप गोप्य हो रह्या है। साक्षात् कैसै होय? भावना परोक्ष ज्ञान करि बढ़ाई है। सो कैसै सिद्ध होय? सो कहिये है—

जैसै दीपक के पांच पड़दे हैं। एक पड़दा दूरि भये, झीणा बारीक उद्योत भया। दूजा पड़दा दूरि भया, तब चढ़ता प्रकाश भया। तीजा गये

१ ख 'निज स्वभावतैं'।

चढ़ता भया। चउथा गये अधिक चढ़ता भया। पांचवा गया तब निरावरण प्रकाश भया[1]। ऐसैं ज्ञानावरण के पांच पड़दे हैं। मतिज्ञानावरण गये स्वरूप का मनन किया। अनादि परमनन था, सो मिट्या। अनन्तर ऐसी प्रतीति आई, जैसैं कोई पुरुष दरिद्री है, करज को रोका है, उसके चिन्तामणि है, तब काहू नैं कह्या, इस चिन्तामणि के प्रभाव तैं निधि विस्तरि रही है, काहू कौं फल दीया था, सो अब तुमहु निधि तौ ल्यौ। साक्षात् कार भये सब फल पावहुगे। प्रतीतिमैं चिन्तामणि पायेका सा हर्ष भया है। ऐसैं मतिज्ञानी स्वरूपका प्रभाव एक देश ही मैं ऐसी जागा केवल ज्ञान का शुद्धत्व प्रतीति द्वार आया सो अशुद्धत्व अंशहु अपना न कल्पै है। स्वसंवेदन मतिज्ञान[2] करि भया है। ज्ञानप्रकाश अपना है। ऐसैं श्रुत मैं विचारै, मैं मनन किया॥

सो कैसा हौं? मैं ज्ञान रूप हौं, आनन्द रूप हौं। ऐसैं च्यारि ज्ञान मैं स्वसंवेदन परिणति कर तौ प्रत्यक्ष है। ज्ञान अवधिमनःपर्यय पर[3] के जानवे तैं एक देश प्रत्यक्ष। काहे तैं सर्वाव-

---

१ मु० प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है। २ क, ख 'मति द्वारि'।
३ मु० प्रतिमें 'पर' पाठ नहीं है।

धिकरि सर्ववर्गणा परमाणु मात्र देखै, तातैं एक देश प्रत्यक्ष। मनःपर्यय हू पर-मन की जानैं, तातैं एकदेश प्रत्यक्ष है। केवल ज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है। अपना जानना ज्ञानमात्र वस्तु मैं जो प्रतीति भई, तातैं सम्यक् नाम पाया। ज्ञानमात्र वस्तु तौ केवल ज्ञान भये शुद्ध, जहां तक केवल नहीं तहां तक गुप्त है, केवल ज्ञान मात्र वस्तु की प्रतीति प्रत्यक्ष करि स्वसंवेदन बढ़ावै है॥

जघन्य ज्ञानी कैसैं प्रतीति करै? सो कहिये है—

मेरा दर्शन ज्ञान का प्रकाश मेरे प्रदेशतैं उठै है। जानपना मेरा मैं हौं। ऐसी प्रतीति करता आनन्द होय सो निर्विकल्प सुख है। ज्ञान उपयोग आवरणमैं गुप्त है। ज्ञानमैं आवरण नाहीं। काहेतैं? जेता अंश आवरण गया, तेता ज्ञान भया, तातैं ज्ञान आवरणतैं न्यारा है, सो अपना स्वभाव है। जेता ज्ञान प्रगट्या तेता अपना स्वभाव खुल्या, सो आपा है। इतना विशेष—आवरणकौं गयेहू परमैं ज्ञान जाय, सो अशुद्ध। जो जेता अंश निजमैं रहै, सो शुद्ध। तातैं गुप्त केवल है। परि (परन्तु) परोक्ष ज्ञान मैं प्रतीति निवारण की करि करि आनन्द बढ़ाइये। ज्ञानं शुद्ध भाव-

---

मु॰ ज्ञान।

तातैं शुद्ध होय, यह निश्चय है। उक्तंच[1]—"या मतिः सा गतिः" इति वचनात्।

अपना स्वरूप साक्षात् कैसै होय? सो कहिये है—

प्रथम, निर्ममत्वभावतैं संसारके भाव अधो करै। कैसैं करै? सो कहिये हैः—दृश्यमान जो सब रूपी जड़, तातैं ममत्व न करना। काहेतैं भीत जड़ तामैं आपा मानैं सुख कहा? ऐसैं शरीर जड़ तामैं ममत्व न करना, काहेतैं आपा मानै सुख कहा[2]? अर राग द्वेष मोहभाव, असाता भाव, तृष्णा भाव, अविश्रामभाव, अस्थिरभाव, दुःखभाव, आकुलभाव, खेदभाव, अज्ञानभाव यातैं हेय हैं। आत्मभाव, ज्ञानमात्र भाव, शान्त भाव, विश्रामभाव, स्थिरताभाव, अनाकुलभाव आनन्द भाव, तृप्तिभावैं[3], निज-भाव उपादेय हैं॥

आत्म परिणति मै आत्मा है। मै हौ ऐसी परिणति करि आपा प्रगटै। आपा मैं परिणति आई मैं हौ पणा की मानि स्वपद का साधन है।

---

१ मु० प्रति में यह वाक्य नहीं है।

२ मु० प्रति में "शरीरादि जड़ तामैं आपा मानैं सुख कहा" पाठ है।

३ यह वाक्य क० ख० प्रतियों में नहीं है।

मैं मैं परिणाम मैं कहे हौं । मैं मैं परिणामोंने स्वपदकी आस्तिक्यता करि स्वपद परिणाम विना ठावा (योग्य स्थान) न होय । काय चेष्टा नहीं । वचन उच्चारणा नहीं। मन चिन्तवन नहीं । आत्म पदमै आपकी मग्नता स्वरूपविश्राम, आनन्दरूप पद मैं स्थिरता चिदानन्द, चित्परिणति का विवेक करना । चित्परिणति चिद्मैं रमै, आत्मानन्द उपजै । मनद्वार विवेक होय परि मन उरै रहै । मन पर है, ज्ञान निजवस्तु है । सो ऐसैं विचारतैं दूरि रहैहै। काहे ते ? परमात्म पद गुप्त है । ताकी मन व्यक्त भावना करत सकै है । काहे तें ? परमात्म भावना करत करत परमात्म पद नजीक आवै, तब परमात्मा के तेज तैं मन पहल्यौंही मरि निवरै (निवृत्त होय) है । काहेतैं ? सूरिमा (के)तेजतै कायर विना संग्राम ही मरै । सूर्य के तेजतै अन्धकार पहल्यौं ही नाश होय जाय, तैसै जानियौ ॥

चिदानन्द भावनातैं चित्परिणति शुद्ध होय। चित्परिणति शुद्ध भये चिदानन्द शुद्ध होय है । अनात्म परिणाम मेटि आत्मपरिणाम करना ही कृतकृत्यपणा है । योगीश्वर भी इतना करै हैं । प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि, याही के नि-

भिन्न हैं। स्वरूप-परिणाममैं अनन्त सुख भया। निजपद (की) आस्तिक्यता भई। अनुपपदमैं लीनता भई। एक स्वरस भया, शुद्ध उपयोग भया। अनुभव सहजपदका भया। महिमा अपार आप परिणाम की है। परिणाम आपके किये बिना परमेश्वर परपरिणामतैं गोता खाय हैं। अपने परिणाम स्वरूपानन्दी भये, परमेश्वर कहाया। ऐसा प्रभाव आत्मज्ञान परिणामका है। अपूर्व लाभ अविनाशीपदका भया परिणमनतैं। सो परिणाम कैसैं स्वरूपमैं लागै ? सो कहिये है—

परसूं[1] पराङ्मुख होय बारम्बार स्वपद अवलोकनि के भाव करै। दर्शन ज्ञान चारित्र चेतना का प्रकाश ठावो करि करि स्वरूप परिणति करै। आतम-ज्योति अनात्मा सौ भिन्न अखण्डप्रकाश आनन्द चेतना स्वरूप चिद्विलासका अनुभवप्रकाशो[2] परिणाम जातै उठ्या, तामै परिणाम लगावै। ज्ञानवारै परिणाम न करै। परिणाम तरंग चेतना अंग अभंग मै अन्तरंग लीन भया करै। अमरपुरी निवास निज बोधके विकासतैं व्है। निश्चय, निश्चल, अमल, अतुल, अखण्डित अमिततेज अन-

१ मु० प्रति में यह पाठ नहीं है।

२ इसके बाद मु० प्रतिमें "परिणाम करि प्रकाशै" वाक्य पाया जाता है।

न्त गुणरत्नमण्डित ब्रह्माण्ड को लखैया ब्रह्मपद पूर्ण परम चैतन्य ज्योतिस्वरूप अरूप अनूप त्रैलोक्य भूप परमात्म रूप पद पाय पावन होय रहै, सो अनुभव की महिमा है[1] ॥

यथार्थ ज्ञान, परमार्थ निधान, निज कल्याण, शिवथान रूप भगवान्, अमलान, सुखवान्, निर्वाणनिधि, निरुपाधि, निज समाधि, साधिये, आराधिये। अलख, अज, आनन्द, महागुण वृन्द धारी, अविकारी, सब दुःखहारी, बाधारहित, महित, सुरस, रस सहित, निरंशी, कर्मको विध्वंशी भव्यको आधार, भव-पार को करण हार, जगत सार, दुर्निवार दुःख चूरै। पूरै पद आप, भव-ताप पुण्य-पापकौं मिटायकैं, लखाय पद आतम दरसाय देत चिदानन्द, सदा सुख कन्द, निरफंद लखावै, अविनाशी पद पावै, लोकालोक झलकावै, फेरि भव मैं न आवै, सब वेद गुण गावै। ताहि कहां लौ बतावै ? वैन (वचन) गोचर न आवै। यह परम तत्व है, अतत्वसौं अतीत, जामैं नांहि

---

१ दरसन ज्ञान शुद्ध चारितको एक पद, मेरो है सरूप चिन्ह चेतना अनन्त है, अचल अखंड ज्ञान ज्योति है उद्योत जामैं, परम विशुद्ध सब भाव मैं महन्त है। आनन्दको धाम अविराम जाको आठौं जाम, अनुभवैमोक्ष कहै देव भगवन्त है, शिवपद पायवे को और भांति सिद्धि नांहि, यातैं अनुभवो निज मोक्ष तियाकन्त है ॥४५॥ —ज्ञान दर्पण।

विपरीत, करणी, भव दुःखन की भरणी, हित हरणी अनुसरणी, अनादि की ही मोह राजा नैं बनाई। जग जीवन कौं भाई, दुःखदाई ही सुहाई, या अज्ञान अधिकाई, जामैं लगी बहु काई। ज्ञान रीति उरि आनी। विपरीत करणकौं भानी। साध-कला साधि महा होइ। निज ध्यान आनन्द सुधा को व्है पान। मोक्षपद को निदानी इदानीं ही समय मैं स्वरशी वशी भये हैं। इन्द्रिय चोर कसी, काय, निरताय निहार-यो पद परमेश्वर स्वरूप अघट घट मैं व्यापक अनूप चिद्रूपकौं लखायो। भ्रम भावकौं मिटायो। निज आतम-तत्व पायो। दरसायो देव अचल अभेव टेव। सासतीको निवासी सुखराशी, भवसौं उदासी हो लहै। बाहरि न बहै। निज-भाव ही कौं चहै। स्वपदका निवास स्वपद मैं है। बहिरंग संग मैं ढूंढि ढूंढि व्याकुल भया जैसैं मृगवासकौं (सुगन्धि को) ढूंढै, कहूं पर-जायगां (दूसरी जगह) न पावै, तैसैं पद आप कौं पर मैं न पावै॥ मोह के विकार तैं आपा न सूझै। संतन के प्रतापतैं गुण अनन्तमय चिदानन्द परमात्मा तुरत पावै॥ पर-पद-आपा जहां ताईं तहां ताईं सरागी भया व्याकुल रहै। ज्ञान दृष्टिसौं दर्शन-ज्ञान-चारित्रकौं एक पद स्वरूप

अवलोकन करत ही पर मानिकी तुरत हानि होय। राग विकार मिटत ही वीतराग पद पावै। तब अनाकुल भया अनन्त सुख रसास्वादी होय आपा अमर करै॥ जैसैं कोई राजा मदिरा पीय निन्द्य स्थानमैं रति मानै, तैसैं चिदानन्द देहमैं रति मानि रह्या है। मद उतरै राज पदका ज्ञान होय राजनिधान विलसै, स्वपदका ज्ञान भये सच्चिदानन्द सम्पदा विलसै॥

कोई प्रश्न करै, ज्ञान तौ जानपणा रूप है, आपकौं क्यौं न जाणैं? ताका समाधान, जानपणा अनादि परसौं व्यापि, पर ही का हो रह्या है। अब ऐसा विचार करे तैं शुद्ध होय। यह परका जानपणा भी ज्ञान विना न होय। ज्ञान आत्मा बिना न होय। तातैं पर-पदका जानन हारा मेरा पद है। मेरा ज्ञान मैं हौं। पर-विकार पर हैं। जहां जहां जानपणा, तहां तहां मैं ऐसा दृढ़ भाव सम्यक्त्व है। सो सुगम है, विषम मानि रह्या है। मोहमद वाऱ्यो ज्ञान अमृत पीय उतरि ब्रह्मपद कौं सँभारि, डारि भवखेद, भेद पाय निज सौं, अभेद आप पदकौं पिछानि, त्यागि परवाणी, जाणि चिदानन्द, मोह मानि भानि कैं, गुणकौ ग्राम अभिराम, सुखधाम रूप

सो ही है स्वरूप। सो ही भाव मोक्षकौ उपाय उपेय कौ साधै, शुद्ध आतम आराधै। यो ही शिव-पंथ निर्ग्रन्थ बहु साधि साधि, समाधि कौ पाय, परम पदकौं पहुंचै। अपना चेतना प्रकाश मोह विकारकौं पाय, मैला भया भेद ज्ञान जड़ चेतन का निरवारा करै। ताकौं उर मैं धरि करि निज ज्ञान का अभ्यास बारम्बार सार अविकार अपना अखण्ड रूप जानि अनुभव उर आनि महा मोह-हठ भानि स्वरूपरस अपने स्वभाव मै है। तिस स्वभावकौं निज उपयोग मैं ठावा करै। स्वरूप की उपयोग शक्ति कर्ममै गुप्त भई तौ कहा शक्ति कौ अभाव मानिये ?

जैसै काहू कौ पुत्र घर में है, बाजारमै काहू ने बूझो, तौ कहै हमारे पुत्र है। अभाव न कहै। व्यवहार मैं हू यह रीति है। छतै कौ अनछतौ न करै। चिदानन्द तेरौ अचिरज आवतु है। दर्शन ज्ञान शक्ति छती ताकौ अनछती करि राखी है। जैसैं लोटन जड़ी कौ (जटामांसी जिसको बिल्ली लोटन कहते हैं) देखि बिल्ली लोटै है, तैसैं मोहतैं संसार भ्रमण है। नैक हू इतै स्वरूप मै आवै तौ त्रिलोक कौ राज्य पावै। सो तौ दुर्लभ नाहीं॥ जैसैं नर पशुका स्वांग धरै तौ पशु न होय, नर

ही है। तैसैं आत्मा चौरासी के स्वांग करै तौऊ चिदानन्द ही है। चिदानन्द पणो दुर्लभ नाहीं। जैसैं कोई काठकी पूतरी कौं सांची नारी मानि वाकौं बुलावै, चाहि करै, वाकी सेवा करै पीछे जानै काठकी तब पछितावै तैसै जड़की सेवा करै है। अज्ञानी भया जड़ मैं सुख कल्पै है। ज्ञानी होय, जब झूठ मानि तजै

जैसैं मृग मरीचिकामैं जल मानै है, तैसैं यह पर मैं आपा मानै है। तातैं सांचे ज्ञानतैं वस्तु जानौ, तब ही भ्रम मिटै। बारम्बार सार सांचो उपदेश श्री गुरु कहैं हैं। आपहू जानै है। ऐसो अविद्याको आवरण है ताकरि झूंठको सांच मानि रह्या है। त्रिबक (तीन जगहतैं बांकी टेढ़ी ऐसी रस्सी) जेवरी मैं सर्प त्रिकाल नाहीं, तैसैं ब्रह्ममैं अविद्या नहीं। सो सारे समुद्र के जल स धोयेहू देह अपावन है। ताको पावन मानि रह्यौ है। ऐसी धिठाँही पकरी है। जोरावरी ठीकरी कौ रूपयो चलावै सो न चालै। अपनी भूलि न तजै

१ जैसैं नर कोउ वेष पशुके अनेक धरै, पशु नहीं होय रहै यथावत् नर है। तैसैं जीव चारिगति स्वांग धरै, चिरही को तजै नाहीं एक निज चेतना कौ भर है। ऐसी परतीति किये पाइये परमपद होय चिदानन्द शिवरमणीको वर है, सासतौ सुथिर जहां सुखको विलास करै, जामैं प्रतिभासै जेते भाव चराचर है ॥४०॥ —ज्ञान दर्पण।

२ देह अपावन अथिर घिनावन यामैं सार न कोई [illegible]। सागर के जलतैं शुचि कीजे तो भी शुद्ध न होई ॥ भूधरदासकृत पार्श्वपुराण।

तो अपनी हांसी खलक मैं (संसारमें) आप करावै । कै देखो अनन्त ज्ञान को धनी भूलि दुःख पावै है । हांसी के भये जन सरमिंदो होय । फेरि हांसी को काम न करै । याकी अनादि की जगत मैं हांसी भई है । लाज न पकरै है । फेरि फेरि वाही झूंटी रीति कौं पकरै है । जाकी बात हू के किये अनुपम आनन्द होय, ऐसो अपनो पद है । ताकौ तौ न ग्रहै । पर वस्तु की ओर देखत ही चौरासी को बन्दीखानो है, ताकौं बहोत रुचि सेती सेवै है । ऐसी हठ रीति विपरीति रूपकौ अनूप मानि मानि हर्ष धरै है । जैसैं सांप कौ हार जानि हाथ घालौ तौ दुःख होय ही होय, तैसैं रुचि सेती पर सेवन तैं संसार दुःख होय ही होय ॥

जैसैं एक दृष्टिबन्धवालौ नर एक नगरमै एक राजा के समीप आय रह्यौ । केतेक दिन पीछैं मूवौ । तब वा नर नैं राजा कौ मूवो न जनायौ । राजा कौ तो बहुत उंडो (ऊंडो-गहरो) गाड़ि माटी दे, ऊपरि बे मालूम जायगां करि दृष्टिबन्ध सौ काठ कौ राजा दरबारमैं बैठायो । दृष्टिबन्ध सूं सबकौ सांचौ भासै । जब कोई राजा कौं बूझै, तब वो नर जुबाब दे, तब लोक जानै, राजा बोलै

है। ऐसो चरित्र दृष्टि बन्धसौं कियौ। तहां एक नर वन की बूँटी सिर परि टांगि आयौ, उस बूँटी के बलतैं वाकी दृष्टि न बँधी। तब वह नर लोक कौ कहनै लागो, रे कुबुद्धि जन हो! काठकौ (राजा) प्रत्यक्ष देखिये है। तुम याकौ सांचो राजा जानि सेवो हो, धिक्कार है तुम्हारी ऐसी समझिकौ। तैसैं ये संसारी सब इनकी दृष्टि मोह सौं बँधी, परको आपा मानि सेवै हैं। परमैं चेतना का अंशहू नाहीं। ज्ञान जाकै भयो, सो ऐसै जानै है, ये संसारी कुबुद्धि जड़मैं आपा करि मानै हैं। दुःख सहै हैं। धिक्कार इनकी समझि कौ! झूठे हठ दुःखदायककौ सुखदायक जानि सेवै हैं।

जैसैं काहू को जन्म भयो, जन्मतै ही आँखि परि, चामड़ी कौ लपेटौ चल्यो आयो, माहि सूं (आभ्यन्तर में) आँखि कौ प्रकाश ज्यौ कौ त्यौ है[1]। बाह्य चर्म आवरण सौं आपकौ शरीर आपकौ[2] न दरसे। जब कोऊ तबीब (वैद्य-हकीम) मिल्यो, तानैं कही, याकै मांहि प्रकाश ज्योतिरूप आँख सारी है। वानैं जतन करि चर्म को लपेटौ

---

१ मु० "है" नहीं है।

२ मु० प्रति में "शरीर, आपकौं" नहीं है।

दूरि कियो, तब शरीर आपकौं आप ही देख्यौ, और भी दरसै लाग्यौ। या प्रकारि अनादि ज्ञान दर्शन नैन मुद्रित भये, चले आये, आप स्वरूप न देख्यौ। तब श्री गुरु तबीब (नेत्र वैद्य) मिले, तब ज्ञानावरण दूरि करण को उपाय बतावत ही याके श्रद्धान करि दूरि ही भयो। तब आपणौ अखण्ड ज्योतिः स्वरूप पद आप देख्यो, तब अनन्त सुखी भयो ॥

जेवरीमै सांप नहीं,सीप मै रूपे नहीं.माड़ली (मृग तृष्णा)मै जल नहीं, कांच-मन्दिरमै दूजो स्वान नहीं, मृग बारै बास नहीं, नलनी कौ सूवो काहू नें पकर्‌यो नहीं, बानराकी मूठी काहू पकरी नहीं, सिंह कुवामै दूजो नहीं, ऐसै कोऊ दूजो नहीं, आप ही की भूलि झूठी, तातै आप दुःख पावै है। दूजो मानि मानि दुःख पावै है । सांच जानै सदा सुखी होइये ॥ यह आत्मा सुख के निमित्त अनेक उपाय कर है। देश देश फिरै, लक्ष्मी कमाय सुख भोगवै। अथवा परीषह अनेक सहै, परलोक सुख निमित्त, सुख[1] का निधान निज स्वरूप कौ न जानै। जान तौ तुरत सुखी होय ॥

---

१ मु० प्रति में 'सुखका' शब्द नहीं है।

जैसैं सब जन की गांठड़ी मैं लाल हैं, वे सब मसकती[1] होय रहे हैं। जो गठडी खोलि देखैं, तौ सुखी होंय। अन्धले तौ कूप मैं परै तौ अचिरज नहीं। देखता परै सो अचिरज। तैसैं आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है, अरु संसार कूप मै परै है, यह बड़ा अचिरज है। मोह ठग नै ठगोरी इसकै सिर डारी, तिस तैं पराघर ही कौं आपा मानि निजघर भूल्या है, ज्ञानमन्त्रतै मोह ठगोरी नै उतारै, तब निज घर कौ पावै। बार बार श्री-गुरू निज घर पायवे को उपाय दिखावैं हैं। अपने अखंडित उपयोग निधान कौ ले अविनाशी राज्य करि। तेरी हरामजादगी तैं अपना राजपद भूलि कौडी कौड़ी कौं जाच (मांग) कंगाल भया है। तेरा निधान ढिग ही था, तैं न संभाल्या। तातैं दुःखी भया॥

जैसे चांपा (नामका) ग्वाल धतूरै कौं पीय उन्मत्त भया, मैं चांपा नाहीं, चांपा के घर पीछै ठाढ़ा (खड़ा) होय हेला[3] (पुकारा) दिया,

१ लाल बँध्यो गठड़ी विषैं, लाल बिना दुख पाय।
खोल गांठड़ी जो लखै, लाल तुरत मिल जाय॥

२ यह अरबी भाषा का शब्द 'मशक्कत' है, जिसका अर्थ श्रम, कष्ट अथवा तकलीफ होता है। देखो, हिन्दी उर्दू कोष।

३ हेला=हल्ला, पुकारना, आवाज देना।

चांपा घरि है ? तब उसकी नारी नें कह्या, तूं कौन है ? तब चेत भया मै चांपा हौ। तैसें श्री-गुरू आपा बताया है। पावै ते सुखी होय। कहां लौं कहिये ? यह महिमा निधान अमलान अनूप पद आप बण्या है, सहज सुख कन्द है, अलख अखंडित है, अमिततेजधारी है। दुःखद्वन्द्वमैं आपा मानि अति आनन्द मानि रह्या है अनादि ही का, सो यह दुःख की मूल भूलि जब ही मिटै, जब श्रीगुरु बचन सुधारस पीवै। चेत होय परकी ओर अवलोकन मिटै। स्वरूप स्वपद देखत ही तिहूं लोकनाथ अपना पद जानै[1]। विख्यात वेद बतावै हैं॥

नटवा स्वांग धरै नांचै है। स्वांग न धरै तौ पर रूप नाचना मिटै। ममत्वतै पर रूप होय होय चौरासी का सांग (स्वांग) धरि नांचै है। ममत्व मेटि सहज पदकौ भेटि थिर रहै, तौ नांचना न होय। चंचलता मेटै चिदानन्द उघरै

१ मेरो सरूप अनूप विराजत मोहि मैं और न भासत आना।
ज्ञान कला निधि चेतन मूरति एक अखण्ड महा सुख थाना॥
पूरन आप प्रताप लियें जहा योग नहीं परके सब नाना।
आप लखैं अनुभाव भयौ अति देव निरंजन को उर आना॥४३॥
—ज्ञानदर्पण

है, ज्ञानदृष्टि खुलै है। नैक स्वरूप मैं सुथिर भये गति भ्रमण मिटै है। तातै जे स्वरूप मै सदा स्थिर रहैं, ते धन्य हैं॥

अपनी अवलोकनिमैं अखण्ड रस धारा वर्षै है, ऐसा जानि, निज जानि, पर मानि कौं मेटि, यह मैं सुखनिधान ज्योति-स्वरूप परम प्रकाशरूप अनूपपद रूप स्वरूप हौं। इस आकाशवत् अविकार पदमैं चिद्विकार भया, परसंयोगतैं। इहां तौ परके निवास का अवकाश न था। कैसैं अनादि ठहर्या? तहां कहिये है।

कनक खानमैं कनक चिरहीका गुप्त है। तैसैं आत्मा कर्म मैं गुप्त अनादि ही का है। पर जोग अनादि तै अशुद्ध उपयोग अशुद्धता लगी है, सो देखि। कैसै लगी है, सो कहिये है॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, इन्द्रिय, मन, वचन, देह, गति, कर्म, नोकर्म, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल अन्य जीव जितनेक पर वस्तु हैं। तितने आप करि जानिये है। सो मैं ही हौं, मैं इनका कर्त्ता हौ, ये मेरे काम हैं, "मैं हौं सो ये हैं, ये हैं सो मैं हौं" ऐसैं पर वस्तु कौं आपा जानै, आप कूं पर जानै, तब लोकालोक

की जानने की शक्ति सर्व अज्ञान भावकूं परणई है। सोई जीवकौ ज्ञानगुण अज्ञानविकार भया। यौं ही जीवका दर्शन गुण था। जेते पर वस्तु के भेद हैं, तिनकौं आपकरि देखै है, ये मैं हौ, आपा पर-मैं देखै है, आपाकौ पर देखै हैं। लोका लोक देखने की जेती शक्ति थी, तेती सर्व शक्ति अदर्शनरूप भई। यौं करि जीवका दर्शन गुण विकार रूप परिणम्या। अर जीवका सम्यक्त्व गुण था, सो जीवके भेदनकौ अजीव की ठीकता करै है। चेतन कौ, अचेतन, अचेतनकौ चेतन, विभावकौं स्वभाव, स्वभावकौ विभाव, द्रव्य अद्रव्य, गुण अगुण, ज्ञानकौं ज्ञेय, ज्ञेयकौं ज्ञान, आपकौं पर, परकौं आप, यौं ही करि और सर्व विपरीत की ठीकता आस्तिक्य भावकौ करै है। यौं जीव का सम्यक्त्व गुण मिथ्यारूप परिणम्या। और जीवका स्व-आचरण गुण था, जेती कछू पर वस्तु हैं तिसी पर कौ स्व--आचरण करि किया करै, पर विषै तिष्ठ्या करै, परही कौ (राग भाव वश) ग्रह्या करै, अपने चारित्रगुण की सब शक्ति पर विषै लगि रही है, यौं जीवका स्वचारित्र गुण भी विकाररूप परिणमै है।

अवर इस जीवका सर्व स्वरूप परिणमनेका बलरूप सर्व वीर्य गुण था, सो निर्बल रूप होय परिणम्या स्वरूप परिणमनेका बल रहि गया निर्बल भया परिणम्या। यौं करि जीवका वीर्य गुण विकार रूप परिणम्या। अवर इस जीवका आत्म स्वरूप रस जो परमानन्द भोग गुण था, सो पर पुद्गलका कर्मत्व व्यक्त साता असाता पुण्य-पाप रूप उदय पर-परिणामके बहु भांति विकार चिद्विकार परिणामही का रस भोगव्या करै, रस लिया करै, तिस परमानन्द गुणकी सर्व शक्ति पर परिणामही का स्वाद स्वादा करै। सो परस्वाद परम दुःखरूप। यौं करि जीवका परमानन्द गुण दुःख विकार रूप परिणम्या। यौं ही करि इस जीवके अवर गुण ज्यौं ज्यौं विकारी भये हैं, त्यौं त्यौं ग्रन्थान्तरतैं जानि लेने।

इस जीवके सर्व गुण हीके विकारका चिद्विकार नाम संक्षेप सूं कहना (कहा है)। गुण गुणकी अनन्ती शक्ति कही सत्ताकी है (सो वह) शक्ति अनन्त गुण मैं विस्तरी। सब गुण की आस्तिक्यता सत्तातैं भई। सत्तानैं सामता सबकौं राख्या। अनन्त चेतनाका स्वरूप असत्ता होता, तौ चिच्छक्तिरूप चेतना अविनाशी महिमा न

रहती। सत् चित् आनन्द विना अफल भये किस कामके? तातैं[2] सत् चित् आनन्द रूप करि आत्मा प्रधान है। अरूपी आत्म प्रदेशमैं सर्वदर्शनी सर्वज्ञत्व स्वच्छत्व आदि अनन्त शक्तिका प्रकाश है, तें उपयोग के धारी अविकारी कर्मत्वकरि आवरै, संकोच विस्तार शरीराकार भये। आत्मा आकाशवत् कैसैं संकोच विस्तार धरै? पुद्गल संकुचै विस्तरै, तौ काष्ठ पाषाण घटते बढ़ते होय। सो चेतना विना न बढ़ै। चेतन ही बढ़ै घटै, तौ सिद्धके प्रदेशका विस्तार होय कै घटि जाय, सो भी नाहीं। जड़ चेतन दोन्यौं मिले संकोच विस्तार हो है। प्रदेशमैं सब गुण कहे हैं। पर संसार अवस्थातैं मोक्षमार्ग की चढ़ि न भई। तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग कह्यो[1]। इनकी जेती जेती विशुद्धि होत भई, तेता[2] तेता मोक्षमार्ग भया॥

निश्चय मोक्ष-मार्ग दोय प्रकार—सविकल्प, निर्विकल्प। सविकल्प[3] मैं "अहं ब्रह्म अस्मि" मैं ब्रह्म हूं—ऐसा भाव आवै। निर्विकल्प-वीतराग स्वसंवेदन[4] समाधि कहिये। लोकालोक जाननेकी

१ 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" तत्वार्थसूत्र १-१। २ ख 'तातैं'।
३ मु० प्रतिमें यह वाक्य नहीं है। ४ क प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है।

शक्ति ज्ञानकी, स्वसंवेदन जेता भया, तामैं स्वज्ञान विशुद्धताके अंश होत भये। सो ज्ञान सर्वज्ञ शक्तिमैं अनुभव किया। जेता ज्ञान भया शुद्ध, तेता अनुभवमैं सर्वज्ञानकी प्रतीति भाव वेदना ऐसा भया। सर्वज्ञानका प्रतीति भावमैं आनन्द बढ्या। ज्ञान विमल अधिक होत भया। ज्ञानकी विशुद्धताकौं ज्ञानके बलका प्रतीति भाव कारण है। ज्ञान परोक्ष है। पर परिणतिके बल आवरणके होतैं भी उस स्वसंवेदनमैं स्वजातीक सुख भया ज्ञान स्वरूपका भया। एक देश स्वसंवेदन सर्व स्वसंवेदनका अंग है। ज्ञान वेदनामैं वेद्या जाय है साक्षात् मोक्षमार्ग है। यह स्वसंवेदन ज्ञानीही जानै है। स्वरूपतैं परिणाम बारैं भया, सोही संसार स्वरूपाचरण रूप परिणाम सो ही साधक अवस्थामैं मोक्षमार्ग, सिद्धि अवस्थामैं मोक्षरूप है। जेता जेता अंश ज्ञानबलतैं आवरणका अभाव भया, तेता तेता अंश मोक्ष नाम पाया। स्वरूप की वार्ता प्रीति करि सुणै, तौ भावी मुक्ति कही[1]

---

१ 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चित स भवेद्भव्यो, भाविनिर्वाणभाजन ॥"—पद्मनन्दि पंच०।

अर्थात्—जिस जीवने प्रीतियुक्त चित्तसे उस आत्म-तत्वकी बातभी सुनी, वह जीव विशेष कर भव्य है और अल्प समयमें निर्वाणका पात्र है।

अनुपम सुख होय अनुभव करै तिनकी महिमा कौन कहि सकै?

जेता स्वरूपका निश्चय ठीक भावै, तेता स्वसंवेदन अडिग रहै, तेता स्व-आचरण होय[1] तेता ठीक स्वसंवेदन होय, एक भये, तीनों की सिद्धि है। गुप्त शुद्ध शक्ति सिद्धि समानमै परिणति प्रवेश करै। ज्यौं ज्यौं शुद्धताकी प्रतीति मै परिणति थिर होय, त्यौं त्यौं मोक्ष मार्गकी शुद्धि होय। ज्यौं कोई अधिक कोस चालै तब नगर नजीक आवै। त्यौं शुद्ध स्वरूपकी प्रतीतिमैं परिणति अवगाढ़ गाढ़ दृढ़ होय, मोक्ष नगर नजीक आवै। अपनी परिणति खेल आप करि आप भव-सिन्धुतै पार होय। आप विभाव परिणति तै संसार विषम करि राख्या है। संसार-मोक्ष की करणहारी परिणति है, निज परिणति मोक्ष, पर परिणति संसार। सो यह सत्सङ्गतैं अनुभवी जीवनिके निमित्ततैं निजपरिणति स्वरूपकी होय, विषम मोह मिटै परमानन्द भेंटै। स्वरूप पायवे का राह संतोंनैं सोहिला (सरल) किया है॥

चौरासी लाख योनि-सराय का सदा[2] फिरन हारा कबहूं कहूं थिर रूप निवास न किया।

---

१ मु० प्रति में पंक्ति नहीं है। २ मु० प्रतिमें नहीं है।

जब तक परम ज्योति अपनैं शिवघर कौं न पहुंचै तब तक एक[1] कार्य भी न सरै। कहा भया जो जपी तपी ब्रह्मचारी यति आदि बहुत भेष धरै, तौ तातैं निज अमृतके पीवने तैं अनादि भ्रम खेद मिटै। अजर अमर होय तत्व सुधा सेवनेका मार्ग कहा? सो कहिये है:—

अपनैं चिदानन्दस्वरूप कौं अवलोकि, अनुभव करि, सकल अविद्यातैं मुक्त, तत्त्वका कौतूहली होय, निजानन्द केलि कला करि, स्वपदकौं देखि, अनातमका संग फिरि न रहै, अनादि मोहके वशतैं निज हित, अहितमैं मानि रह्या है[2] ता मोह कौं भेदज्ञानतैं भानि[3], (विनष्ट कर) ज्ञान चेतना का अनुभव करि, अनादि अखण्डित ब्रह्मपदका विलास तेरै ज्ञान कटाक्षमैं है।

अज्ञान-पटल जब मिटैं, सद्गुरुवचन-अंजनतैं पटल दूरि भये ज्ञान-नयन प्रकाशै, तब लोकालोक दरसै। ऐसा ज्ञान ताकी महिमा अपार, अनेक मुनि पार भये। ज्ञानमय मूरतिकी सूरतिका सेवन करि करि अपने सहजका ख्याल है। पर परचैमैं विषम है। सहजबोध कलाकरि सुगम, कष्ट क्लेशतैं दूरि है।

---

१ मु० प्रतिमें नहीं है। २ मु० प्रतिमें " अहित मैं मानि रह्या है " नही है। ३ मु० प्रतिमें 'भानि' नहीं है।

काहेतैं ? अफीम खाये विषकी लहरी तुरत चढ़ै। अमृत सेवनतैं तुरत तृप्ति होय सुख पावै। तैसें कर्म संक्लेशमैं शान्त पद नहीं। अनन्त सुख निधान स्वरूप भावनाके करत ही अविनाशी रस होय, ता रसकौं संत सेय आये। तूं ताकौं सेय, श्रेयपदरूप अनूप ज्योतिःस्वरूप पद अपना ही है। अपनैं परमेश्वर पद का दूरि अवलोकन मति करै। आपही कौं प्रभु थाप्य (मान) जाकौं नेक यादि करि, ज्ञान-ज्योतिका उदय होय, मोह-अन्धकार विलय जाय, आनन्द सहित कृतकृत्यता चित्तमैं प्रकटै। ताकौं वेग (शीघ्र) अवलोकि, आन ध्यावन (परका ध्यान एवं चिंतन) निवारि, विचारिकैं संभारि, ब्रह्म विलास तेरा तोमैं है। यातैं कहा अधिक ? जो याकौं छोडि तू परकौं ध्यावै च्यारि वेद भेद लहि, गहि स्वपद स्वरूप सुखरूप तेरी भावनामैं अविनाशी रस चोवा चूवै है। सो भावना करि भ्रमभाव मेंट, तेरी भावनानै झूठे ही भव बनाया है। ऐसा बदफैल स्वभाव कल्लोल के प्रगट होतैं ही मिटै है।

देखि, तूं चेतन है। जड़ अजान है। तैं अजान मैं आपा मान्या, अशुद्ध भया, तेरी लैर अजान न परै है। तूं अपने पद तैं ईधैं को (इधर को) मति

आवै। तेरा जड़ कछु पल्ला न पकरै है। नाहक (व्यर्थ ही) बिरानी (दूसरे की) वस्तुकौं अपनी करि करि झूठी हौंस करै। यह हमैं भोगसें सुख भया, हम सुखी हैं, झूंठी भरम-कल्पना मानि मोद करै है। कछू भी सावधानी का अंश नाहीं, यह कोई अचिरज है, तिहूं लोक का नाथ होय अपने पूज्य पदकौं भूलै। नीच पदमैं आपा मानि विकल होय व्याकुल रूप भया डोलै है।

जैसैं कोई एक इन्द्रजाल का नगरमैं रहै, तहां इन्द्रजालीके वश हुआ इन्द्रजालके हाथी, घोरे, नर, सेवक, स्त्री सब, तिसमैं काहू कौं हुकम करै है। सेवक आय सलाम करैं, स्त्री नृत्य करै। हाथी चढै। घोड़ा दौड़ावै। इन्द्रजाल मैं यह ख्याल[1] (खेल तमाशा) सांचि जानै, विकलता धरि कबहूं काहू के वियोगतैं रोवै, दुःखी होय छाती कूटै। कबहूं काहू का लाभ मानि मोद करै कबहूं श्रृंगार बनावै, कबहूं फौज देखै, कबहूं मौज (आनन्द) बकसै, ऐसैं झूठ का ख्याल सांचि मानि रह्या है, संसार मैं[2] सब कहैं इन्द्रजाल झूंठा है, उनमैं रंचहु सांच नांहीं। ऐसैं देव, नर, नारक तिर्यंच के शरीर जड़ हैं। चेतन का अंश नांहीं, भ्रमतैं श्रृंगारै।

---

१ मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है। २ मु० प्रतिमें यह पक्ति नहीं है।

खान पान चोवा (अर्क चूआ) लगावनादि अनेक जतन करै। झूंठ ही मैं मोद मानि मानि हरखै मूवे सौं जीवता सगाई करै! कार्य कैसैं सुधरै।

जैसैं श्वान हाड़ को चाबै, अपने गाल, तालु मसूढ़े का रक्त उतरै, ताकौं जानै भला स्वाद है! ऐसैं मूढ़ आप दुःख मैं सुख कल्पै है! पर फंद मैं सुखकंद सुख मानै! अग्नि की झाल शरीर मैं लगै, तब कहै हमारै ज्योती का प्रवेश होय है। जो कोई अग्नि झाल कूं बुझावै, तासौं लरै। ऐसैं परमैं दुःख संयोग, पर का बुझावै तासौं शत्रु की सी दृष्टि देखै! कोप करै। इस पर-भोग मैं भोग मानि भूल्या, भावना स्वरसकी यादि न करै। चौरासी मैं पर वस्तु कौं आपा मानै तातैं चोर ही चिरकालका (चिर-काल का) भया। जन्मादि दुःख-दण्ड पाये तौहू चोरी पर वस्तु की न छूटै है। देखो देखो! भूलि तिहूं लोकका नाथ नीच पर कै आधीन भया। अपनी भूलि तैं अपनी निधि न पिछानैं। भिखारी भया

१ जैसैं कोऊ कूकर छुधित सूके हाड चाबै, हाडनि की कोर चहु ओर चुभै मुखमैं। गाल तालु रसना मसूढ़नि कौ मांस फाटै, चाटै निज रुधिर मगन स्वाद सुखमैं॥ तैसैं मूढ़ विषयी पुरुष रति-रीति ठानै, तामैं चित्त मानै हित मानैं खेद दुखमैं। देखै परतच्छ बल-हानि-मल-मूत-खानि गहै न गिलानि पगि रहै राग रुखमैं॥३०॥ नाटक समय सार, बंधद्वार।

२ मु० प्रतिमें यह शब्द नहीं है।

डोलै है। निधि चेतना है सो आप है। दूरि नांहीं देखना दुर्लभ है। देखैं सुलभ है॥

किसीनैं पूछा, तूं कौन है? वानैं कह्या, मैं मडा (मुर्दा-मरा हुआ) हौं, तौ बोलता कौन? कहै मैं जानता नाहीं। तौ मैं मडा हौं ऐसा किसनैं जान्या? तब संभार्‍या, मैं जीवता हौं। ऐसैं यह मानैं, मैं देह हौं तौ यह देहमैं जो मानना किया सो कौन है? कहै, मैं न जानौं ऐसा ल्यावना किसनैं किया? यह आपाकौं खोजि देखने जानने परखनेमैं स्वरूप संभारि, तब सुखी होय है। जैसें कोई मदिरा पीय उन्मत्त पुरुषाकार पाषाण थंभकौं देखि सांचा जानि उससौं लर्‍या। वह ऊपरि आप नीचे आप ही भया। वाकौं कहै, मैं हार्‍या। ऐसैं परकौं आपा मानि, आपं मानितैं दुःखी भया। कोई दूजा नाहीं दुःखदाता, तेरी भावनाने भव बनाया, जा पैद पैदा किया, अचेतनकौं चलाया, मूवैका जतन अनादिका करता है। आपसा तू करता है झूठी मानिमैं तेरा किया कछु जड़ चेतन न होय। तूं ही ऐसी झूठी कल्पनातैं दुःख पावता है। तेरा क्या फायदा है? तूं ही न विचारै है। मेरा फंद मैं पारत हौं। कछु सिद्धि नांही। बिनु विचार

१ यह शब्द मु० प्रति में नहीं है।

तैं अपनी निधि भूल्या। अनन्त चतुष्टय अमृत मैला किया। चेतना मेरा पाड्या फंद ऐसा है। आकाश बांधा है, अचरज आवै है, परि जो केवल अविद्या ही होती तो तू न आवरथ्या जाता॥

अविद्या जड़ छोटी शक्ति (से) तेरी मोटी शक्ति, न हती जाती। परि तेरी शुद्ध शक्ति भी बड़ी, तेरी अशुद्ध शक्ति भी बड़ी। तेरी चितवनी तेरे गरैं परी। परकौं देखि आपा भूल्या, अविद्या तेरी ही फैलाई है। तू अविद्या रूप कर्मन परि आपा न दे, तौ किछु जड़का जोर नाहीं। तातैं अपरम्पार शक्ति तेरी है। भावना परकी करि भव करता भया, संसार बढ़ाया। निज भावनातैं अविनाशी अनुपम अमल अचल परम पद रूप आनन्द घन अविकारी सार सत् चिन्मय चेतन अरूपी अजरामर परमात्माकौं पावै है। तौ ऐसी भावना क्यौं न करिये? इस अपने स्वरूप ही मैं सर्व उच्चत्व, सकल पूज्य पद, परमधाम, अभिराम, आनन्द अनन्त गुण स्वसंवेदरस स्वानुभव परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप अनूपदेवाधिदेवपणौ इत्यादि सब पाइयै; तातैं अपणौ पद उपादेय है[१]।

---

१ एकमेव हि तत्स्वाद्य, विपदामपद पदम्।
अपदान्येव भासन्ते, पदान्यन्यानि यत्पुर.॥ आचार्य अमृतचन्द्र।
जो पद भौ पद भय हरै, सो पद सेऊ अनूप।
जिहि पद परसत और पद लगै आपदा रूप॥१७॥ बनारसीदास।

अर अवर पर पद हेय है। एक देश मात्र निजावलोकन ऐसा है। इन्द्रादि सम्पदा विकार रूप भासै है। जिसके भयेतैं अनन्त सन्त सेवन करि अपने स्वरूपका अनुभव करि भवपार भये तातैं अपने स्वरूपकौं सेवौ ॥

सर्वज्ञ देवनैं सब उपदेश का मूल यह बताया है, एक बेर स्वसंवेदरस का स्वादी होय तौ ऐसा आनन्दमैं मग्न होय, परकी ओर फिरि कबहूं दृष्टि न दे। स्वरूप समाधि संतन का चिन्ह है तिसके भये रागादि विकार न पाईये, जैसैं आकाशमैं फूल न पाईये। देह अभ्यासका नाश अनुभवप्रकाश चैतन्य विलास भावका लखाव लखि लक्ष्य लक्षण लिखनेमैं न आवै। लखैं सुख होय। स्वाद रूप लिखै न होय। आत्म सहित विश्व व्याख्येय, व्याख्या वाणी की रचना, व्याख्याता व्याख्यान करणहार ये सब बातें कछु हैं, सो मोह के विकार तैं मानिये हैं। अनादि आत्मा की आकुलता एक विशुद्ध बोध कलाकरि मिटै है। तातैं सहज बोध कला का निरन्तर अभ्यास करो। स्वरूप आनन्दी होय भवोदधि कौं तिरौ ॥

नरभव कछु सदा तौ रहै नाहीं, साक्षात् मोक्ष साधन ज्ञान कला इस भव बिना और जायगा न यपजै। तातैं बार बार कहिये है, निज बोध कला के बल करि निज स्वरूप मैं रहौ। निरन्तर यह यत्न करौ। ऐसा कहाव तौ बारबार बालक हू न करावै। तुम अनन्तज्ञान के धनी होय करि ऐसी भूलि धरौ, सो बड़ा अचिरज आवै है। सो अचिरज की बात न करिये। चाम हाड मय जड शरीरमैं आपा मानै मोटी हानि है। आपकी जानिमैं सुख समुद्र कूं पाय अविनाशि पुरी का राजा होय, अनन्त चैतन्य शक्ति राजधानी का विलासी होय है। परमैं आपा मानि तूं ऐसैं दुःख पावै, जैसैं कोई मडे कौ वस्त्र आभूषणादि करै, मानै मैं पहरै है! तौ जीवना झूठ ही आपकौं मानै है। ऐसैं देह जड है। याके भोग तूं आप मानि झूठ ही काहे कौ जड की क्रिया आपकी मानै? जैसैं साँप काहू कौं काटै, काहू कौं विष चढै, तौ अचिरज मानिये। जड़ खाय पहिरै, स्नान चोवादि (तैल मर्दन) क्रिया करै, तुम कहौ हम खाया, हम भोग कीया पर के स्वामी भये। सो पर स्वामी भी यौं न मानै। जैसैं राजा किंकरन का स्वामी है। उनके धाये (भोजन से

तृप्त हुये) यौं न कहै मैं धाया हौं। अर तुम देखो, तुमारी ऐसी चाल तुम ही कौं दुःखदायी है।

जो सुन्दर वस्तु होय तौ ऊपरि की अंगीकार न कीजै। देह अशुचि नवद्वार स्रवै[1], दीखत ही की ग्लानि रूप, मांहि सुन्दर होय, तौ बाहिर मैं बुरी परी है। सो मांहि विष्ठा मूत्र की खानि न विनसै, तौ ऐसी हू लीजै। विनसौ हू जौ आपकौं दुःख दायी न होय, तातैं ऐसै को स्नेह तुम ही करौ जन्मादि दुःख भरौ। तुमारी लार जन्मादि अनादि के लगे आये हैं। तुम्हीनैं महान पुरुषों की सी रीति का भाव किया है, जो हम सौं लगै, तिनकौं न छोड़ै। यौं तौ महंत न कहावोगे। महंत तौ पाप कौं मेटैं होय। ये तो पाप का रूप है। तातै तुम समझो। अपने धन को अंग्रेजी (अंगीकार करो) विराना धन जाता रहै तुम फेरि ग्रहौ, ताके दण्ड भव दुःख सहौ हो, तौऊ पर को लेते लेते धकै नाहीं। बहुत दुःखी भये परि (परन्तु) पर ग्रहण की बाण (आदत) न छोड़ौ हौ। साह पद तौ अपने धन तैं पावोगे। यातैं स्व-पर विवेकी होय आत्मधन ग्रहौ। पर का ममत्व कौं

---

१ पल रुधिर राध मल थैली, कीकस बसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करैं किम यारी॥ प० दौलतराम।

स्वप्नांतरमैं मति करौ। तुमारै अखण्ड रत्नत्रयादि अनन्त गुण निधान है दरिद्री नाहीं। जो दरिद्री होय सो ऐसैं काम करै॥

तुम्हारा निधान श्री गुरुनैं तुमकौं दिखाया है, अब संभारि सुखी होहु। जैसैं काहू नारीनैं अपनी सेज परि काठ की पुतरी कौं सिंगार सुवाणी, पति आया तब यौं जान, मेरी नारी शयन करै है। हेला दे, वा न बोलै, तब पवनादि खिदमत (सेवा-टहल) सारी रात्रि विषैं करी। प्रभात भया, तब जानी म झूठ ही सेवा करी। ऐसैं देह कौं सांचा आपा मानि सेवै है। ज्ञान भये जानै, यह झूठ अनादि देह मैं आपा मान्या। हे चिदानन्द तुम पंच इन्द्रिय रूपा चोर पोषौ हौ, जानौ हौ, यह हमकौं सुख दे हैं! सो अन्तर के गुण रत्न ये चोर ले हैं, तुमकौं खबर नाहीं। अब तुम ज्ञान खड्ग संभालौ। चौरन कौं ऐसैं रोकौ फेरि बल न पकरै। विषय कषाय जीति निजरीति की राहमैं आवौ। अर तुम शिवपुर कौं पहुँचि राज करौ तुम राजा दर्शन ज्ञान वजीर राज के थम्भ, गुण वसति, अनन्त शक्ति राजधानी का विलास करौ। अभेद राज राजत तुम्हारा पद है। अचेतन अपावन अथिर सौं कहा स्नेह करौ?॥

नीकैं निहारो। इस शरीर मन्दिर मैं यह चेतन दीपक सासता है। मन्दिर तौ छूटै, परि सासता रतनदीप ज्यौं का त्यौं रहै। व्यवहारमें तुम अनेक स्वांग नट की ज्यौं धरै। नट ज्यौं का त्यौं रहै। त्यौं बद्ध[1] वा स्पष्ट भाव कर्म को है। तौऊ कमलिनी पत्र की नांई कर्म सौं न बंधै, न स्पर्शै। अन्य अन्य भाव मांटी धरै हू एक है। तैसैं तैसैं अन्य पर्याय धरैं हू एक है। समुद्र तरंग करि बृद्धि हानि करै, तौऊ समुद्रत्व करि निश्चल है[2], विभाव करि बृद्धि हानि करै। वस्तु निज अचल है। सोनों वान भेद परि अभेद, यो नाना भेद कर्मतैं परि वस्तु अभेद। फटिक मणि हरी लाल पुड़ी तैं भास,स्वभाव श्वेत है। पर,सौं पर,निज चेतना मैं पर नहीं। षड्भाव ऊपरि ऊपरि रहैं।जलपरि सिवाल की नांई गुप्त शुद्ध शक्ति तेरी चिदानन्द व्यक्त करि भाय ज्यौं व्यक्त व्है। तूं अविनाशी रस का सागर। पर रस कहा मीठा देख्या ? जाके

१ यह शब्द मु० प्रति में नहीं है।

२ सिंधुमें तरग जैसैं उपजै बिलाय जाय नानावत वृद्धि हानि जामैं यह पाइये।
अपने स्वभाव सदा सागर सुथिर रहै ताको व्यय उत्पाद कैसैं ठहराइये।
तैसैं परजाय मांहि होय उत्पाद व्यय चिदानन्द अचल अखड सुधा पाइये।
परम पदारथमें स्वारथ स्वरूपही कौ अविनाशी देव आप ज्ञान ज्योति ध्याइये।
ज्ञानदर्पण १८८

निमित्त तैं संसार की घुमेरी भई, ताही कौं भला जानि सेवै है। जैसैं मद पीवनहारा मद पीवता जाय, दुःख पावता जाय, अधिक घुमेरीमैं भला जानि जानि सेवै ; तैसैं भूला है॥

जैसैं एक नगर मैं एक नर रहै। नगर सूना, तहां दूजा और नाहीं, सो वो नर उस नगर मैं चौरासी लाख घरि, तिन घरन कौं सदा संवारथा ही करै, फिरि दूजे दिन औरमैं रहै, तब वाकौं संवारै। इस भांति उन भींतड़े कौ संवारतैं संवारतैं सारा जन्म बीता। उनके संवारनेतैं रोग भया। जबका संवारै था, तबही का रोग लग्या। आपकी परम चातुरीकौं भूल्या। वा नरकौं बड़ी विपत्ति, बिना प्रयोजन एकला सूने घरन मैं उनकी मशकत सह, टहल करै। आप अनन्त बलवान् वृथा भूलि दुःख पावै है। इस नर का शहर एक परमबसतिका, वहां का यह राजा है। वहां कौ सम्भालै तौ सूने घरन की सेवा तजै, वहां का राज्य करै। तैसैं यह चिदानन्द चौरासी लाख योनि के शरीरन की संवारना करै। जिस घरमैं रहै, बसै संवारै, फिरि दूजी शरीर झौंपड़ीकौं संवारै फिरि और पावै, उसको संवारना फिरै। सब देह जड़, तिन जड़न की सेवा

करते करते अनादि बीता। इस शरीर सेवामैं कर्म रोग अनादिका लग्या आया। तिसतैं इस रोग करि अपना अनन्त बल छीन पड्या, बड़ी बिपत्ति जन्मादि भोगवै है। जड़न कौं ऐसा मानै है, मैं ही हौं।

जैसैं बानर एक कांकरा के पडे रोवै, तैसैं याके देह का एक अंग भी छीजे, तौ बहुतेरा रोवै। ये मेरे और मैं इनका झूठ ही ऐसैं जड़न के सेवन तैं सुख मानै। अपनी शिवनगरी का राज्य भूल्या, जो श्री गुरुके कहे शिवपुरी कौं संभाले, तौ वहांका आप चेतन राजा अविनाशी राज्य करै। "तहां चेतना वसती है। तिहुं लोकमैं आन फिरै और भव का भ्रमण मेटि फेरि जड़मैं न आवै"[1]। आनन्द घन कौं पाय सदा सासता सुख का भोक्ता होय सो कहिये है॥

यह परमातम पुरुष तिसकी निजपरिणति अनन्त महिमा रूप परमेश्वर पद की रमणहारी, सो ही मूल प्रकृति पुरुष प्रकृति का विवेक रूप तरु, तिसके निजानन्द फल (कठिन) तिसकौं तूं रसास्वाद ले करि सुखी होहु। जैसैं कोई राजा कौ विराना गढ़ (दूसरे का किला) लेना मुश्किल

१ यह पंक्ति क, ख, प्रतियों में नहीं है।

"अपने गढ़ में नित्य रहे सो न मुश्किल"[1], तैसैं इस आतमा कौं पर पद लेना मुश्किल है। काहे तैं अनादि पर पद लेता फिरै है। परि पर रूप न भया, चेतन ही रह्या। अरु चेतनापद आतमा का है, इसकौं न भी जानै है, भूल्या फिरै है. तौ भी वाकी रहणी निश्चय करि याहीमैं है, यातैं मुश्किल नाहीं, अपना स्वरूप ही है। भ्रम का पड़दा आपहीनैं अनादि का किया है। तातैं आप आपकौं न भासै है, परि (परन्तु) आप आपकौं तजि बाहरि न गया॥

जैसैं नटवेनैं पशु का वेष धर्या, तौ वह नर नरपणा कौं तजि बारै न गया। पशु वेष न धरै तौ नर ही है। भ्रमनैं पर-ममत्व न करै, तौ देह का स्वांग न धरै, तौ चिदानन्द जैसे का तैसा रहै। जैसैं एक डाबीमैं रतन रक्खा, वाका कछु बिगर्या नाहीं, गुपत पुड़त दूरि करि, काढ़ै तौ व्यक्त है। तैसैं शरीरमैं छिप्या आतमा है, याका कछु न बिगर्या गुप्त है, कर्म रहित भये प्रगट हो है। गुप्त और प्रगट ये अवस्था भेद हैं। दोन्यौं अवस्थामैं स्वरूप जैसै का तैसा है, ऐसा श्रद्धा भाव सुख का मूल है। जाकी दृष्टि पदार्थ शुद्धि

---

१ यह पंक्ति मु० प्रति में नहीं है।

परि नाहीं, कर्म दृष्टि तैं अशुद्ध[1] अवलो , शुद्ध कौं न पावै ? जैसी दृष्टि देखै, तैसौ फल होय। मयूरमुकरंद पाषाण है तामैं सब मोर भासै, पाषाण ओर देखै मोर भासै, पदार्थ ओर देखै पदार्थ ही है, मोर नाहीं। तैसैं परमैं पर भास, निज ओर देखै पर न भासै, निज ही है। सुखकारी निजदृष्टि तजि, दुखःरूप परमें दृष्टि न दीजै॥

हे चिदानन्दराम ! आपकौं अमर करिकैं अवलोकौ। मरण तुम मैं नहीं। जैसैं कोई चक्ररत्न जिसके घर मैं चौदा रत्न नव निधि अर वह दरिद्री भया फिरै, ताकौं अपने चक्रवर्ति पद अवलोकन मात्र तैं चक्रवर्ती आप होय, ऐसैं स्वपदकौं परमेश्वर अवलोकै तौ, तब परमेश्वर है। देखौ देखौ भूल ! अवलोकन मात्र तैं परमेश्वर होय। ऐसी अवलोकना न करै, इन्द्रिय चोरन के वश भया अपने निधान मुसाय (लुटवाय) दरिद्री भया, भव विपत्तिकौं भरै है, भूलि न मेटै है। सो चित्तविकार रूप जीव होय, तब परकौं आपा मानै। ए भाव जीवका निज जाति स्वभाव नाहीं है। इन भावनमैं जो व्यापि रही चेतना सो ही

१ यह शब्द मु० प्रति में नहीं है।

२ यह वाक्य मु० में नहीं है।

चेतना एक तूं जीव निज जाति स्वभाव जानि। यह चेतना है सो केवल जीव है, सो अनादि अनन्त एक रस है, तिसतैं यह चेतना साक्षात् आप जीव जानना, तिसतैं शुद्ध चेतना रूप जीव भये। इन रागादि भावन विषैं आप ही[1] रत हुआ जीव-कर्मचेतना रूप होय प्रवर्तै है। चेतना, जीव चेतना, चेतना रूप आप तिष्ठै है। कर्म चेतना कर्म फल चेतना विकार जीव चेतन का है। परि व्यापक चेतना है। चेतना जीव बिना नाहीं है। चेतना शुद्ध जीव का स्वरूप है। ताके जाने ज्ञाता जीवकै ऐसा भाव होय है॥

अब हम शुद्ध चेतना रूप स्वरूप जान्या। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप हम हैं, विकार रूप हम नाहीं, सिद्ध समान हैं, बन्ध मुक्ति आस्रव संवर रूप हम नाहीं, हम अब जागे, हमारी नींद गई, हम अपनैं स्वरूपकौं एक अनुभवे हैं, अब हम संसारतैं जुदे भये, हम स्वरूप गज परि आरूढ़ भये, स्वरूप गृह विषैं प्रवेश किया, हम तमासगीर इन संसार परिणमनके भये। हम अब आप अपने स्वरूपकौं देखैं जानैं हैं। इतना विचार तो विकल्प है। ज्ञानका प्रत्यक्षरस वेदना भावनमें

---

१ मु० प्रति में यह शब्द नहीं है।

सो अनुभव है। विचार प्रतीतिरूप साधक है, अनुभव भावसाध्य है। साधक साध्य भेद जाने तो वस्तुकी सिद्धि होय। सो कहिये है॥

साध्य-साधक उदाहरण कहिये है। एक क्षेत्रावगाही पुद्गल कर्महीका सहज ही उदय स्थितिकौं होय है, सो साधक अवस्था जाननी। तहां तब लग तिस हवनेकी (होने की) स्थितिस्यौं चित्त बिकार हवनेकी (होने की) प्रवर्तना पाईये है, सो साध्य भेव जानना। मिथ्यात्व साधक, बहिरात्मा साध्य है। सम्यग्भाव साधक है, तहां वस्तु स्वभाव जाति सिद्ध होना साध्य है। जहां शुद्धोपयोग परिणति होना साधक है, तहां परमात्मा साध्य है। व्यवहार रत्नत्रय साधक है, तहां निश्चय रत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टिकौं जहां विरति व्यवहार परिणति हवना (होना) साधक है, तहां चारित्र शक्ति मुख्य हवना (होना) साध्य है। देव-शास्त्र-गुरु भक्ति विनय नमस्कारादि भाव जहां साधक है, तहां विषय कषायादि भावनसौं उदासीनता मनःपरिणति की थिरता (स्थिरता) साध्य है। जहां एक शुभोपयोग व्यवहार परिणति हवना (होना) साधक है, तहां परम्परा मोक्ष साध्य है।

जहां अन्तरात्मा रूप जीवद्रव्य साधक है, तहां अभेद आप ही जीवद्रव्य परमात्मा रूप साध्य है। जहां ज्ञानादिगुण मोक्षमार्ग रूप करि साधक है, तहां अभेद आपही ज्ञानादिगुणका मोक्ष रूप साध्य है। जहां जघन्य ज्ञानादि भाव साधक है, तहां अभेद आपही वे ही (उन्हीं) ज्ञानादि गुण का उत्कृष्ट भाव साध्य है। जहां ज्ञानादि स्तोक निश्चय परिणति करि साधक है, तहां अभेद आपही बहुत निश्चय परिणति रूप ज्ञानादि गुण साध्य है जहां सम्यक्त्वी जीवसाधक है, तहां तिस जीवके सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र साध्य हैं। जहां गुण मोक्ष साधक है, तहां द्रव्य मोक्ष साध्य है। जहां क्षपक श्रेणी चढ़ना साधक है, तहां तद्भव साक्षान्मोक्ष साध्य है। जहां "जहां दरवित भावित यति"[1] व्यवहार साधक है, तहां साक्षान्मोक्ष साध्य है। जहां भावित मनादि रीति विलय (?) साधक है, तहां साक्षात्परमात्मरूप केवल हवना (होना) साध्य है। जहां पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, तहां चिद्विकार विलय हवना (होना) साध्य है॥

१ मु० प्रति में इस पंक्ति की जगह "द्रव्य तैं भाव तैं साक्षात् द्वैत" पाठ पाया जाता है।

जहां परमाणु मात्र परिग्रह प्रपंच साधक है, तहां ममता भाव साध्य है। जहां मिथ्यादृष्टि हवना (होना) साधक है, तहां संसार भ्रमण साध्य है। जहां सम्यग्दृष्टि हवना (होना) साधक है, तहां मोक्षपद होना साध्य है। जहां काल लब्धि साधक है, तहां द्रव्यकौ तैसा ही भाव हवना (होना) साध्य है। इम स्वभाव साधन करि अपने स्वरूपकौं साध्य किया है। यह साध्य-साधक भाव जानि सहज ही साध्य सधै है। विशेष इनका कीजिये है। अहं नरः। अहं देवः। अहं नारकः। अहं तिर्यक्। ये शरीर मेरे; पर मैं निजभाव, परकौं आपा मानना, स्वरूपतैं बाहरि पर पदार्थमैं परिणाम तन्मय करना, राग भावतैं रंजकता करि परके स्वरूपकौं आप प्रतीति करि जानियै। ऐसा मिथ्यात्व, दूजा भेद मिथ्यात्व का। ऐसैं मिथ्यात्वकौं साधै है। सो कहिये है॥

अतत्त्व श्रद्धान-मिथ्यादर्शन, अयथार्थ ज्ञान—मिथ्याज्ञान, अयथार्थ आचरण—मिथ्या आचरण। क्षुधादि अठारा दोष[1] संयुक्त देव की भक्ति तारण-

---

१ जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद। रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद॥ राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष। नाहि होत अरहन्तके, सो छबि लायक म क्ष

बुद्धितैं मिथ्यात्व होय। काहेतैं? परानुभवी है, मिथ्या लीन है, तिनके सेयें मिथ्यात्व होय। ऐसैं दोष रहित गुरु ग्रन्थ लीन विषयारूढ़ पर बुद्धि धारककौं मानैं मिथ्यात्व. मिथ्याशास्त्र मिथ्यामत मिथ्याधर्म इनकौं मानैं मिथ्यात्व, सो मिथ्यात्व बहिरात्माका साधक है। अनादिका बहिरात्मा इस मिथ्या सेवनतैं भया है। तातैं बहिरात्मा साध्यहै। दूजा सम्यग्भाव साधक है। सो वस्तुका जो स्वभाव अनन्त गुण ताकी सिद्धि करे है। काहेतैं? सब गुण यथाविधि स्वरूप सम्यक् अपने स्वरूपकौं जब धरै, तब सम्यग्भावकौं लिये होय. ज्ञानका निर्विकल्प जानपणा सब आवरण रहित केवलज्ञान रूप सम्यगअवस्था रूप, सो सम्यग्ज्ञान कहिये। यौं ही आवरण रहित शुद्ध सम्यक्रूप यथावत् निश्चयभाव रूप निर्विकल्प सब गुण सम्यक् कहिये॥

द्रव्य अपने द्रव्यत्त्व जैसा शुद्ध स्वरूप है, तैसैकौं लिये. पर्याय जैसा कछु परिणमन रूप स्वभाव है, तैसैकौं लिये, ऐसैं द्रव्यगुण पर्यायका स्वभाव जाति सब सिद्ध हवना (होना) सम्यग्भावतैं है। तातैं सम्यग्भाव साधक है। वस्तु स्वभाव जातिसिद्ध हवना (होना) साध्य है,

शुद्धोपयोग परिणति साधक है। परमात्मा साध्य है, सो कहूंतैं शुद्धोपयोग स्वभाव संगतैं होय है। ज्ञान दर्शन तो साधक। तातैं सब रूप शुद्धोपयोग, चारित्ररूप शुद्धोपयोग, सो ज्ञान दर्शन तो साधक, तातैं सब शुद्ध नाहीं। केतेक शक्ति करि शुद्ध हैं। चारित्र गुण बारमैं (गुणस्थान) के ठिकाने सब शुद्ध हैं। परि (परन्तु) परम यथाख्यात (चारित्र) तेरमैं-चौदमैं (गुणस्थानों) मैं नाम पावै है। तातैं केतेक ज्ञान शक्ति शुद्ध भई। ता ज्ञान शक्ति करि केवलज्ञान रूप गुप्त निज रूप ताकौं प्रतीति व्यक्ति करि, तब परिणतिनैं केवलज्ञानकूं प्रतीति रुचि श्रद्धाभाव करि निश्चय किया। गुप्तका व्यक्त श्रद्धानतैं व्यक्त होय जाय है॥

एक देश स्वरूपमैं शुद्धत्व सर्व देशकौं साधै है। शुद्धनिश्चय करि शुद्ध स्वरूप जान्या परिणतिमैं शुद्ध निश्चय भया। तब वैसा ही वेद्या (अनुभव किया)। शुद्धका निश्चय शुद्ध परमात्माकौं कारण है। तातैं शुद्धोपयोग साधक, परमात्मा साध्य है। "व्यवहार रत्नत्रय साधक है[1]," निश्चय साध्य है सो कैसैं? तत्व श्रद्धानमैं हेयका हेय श्रद्धान और निज तत्त्वका उपादेय श्रद्धान, तत्त्व

---

१ मु० प्रति में यह पंक्ति नहीं है।

ज्ञानमें पर-तत्त्वका रूप हेय जान्या, निज तत्त्वकौं उपादेय जान्या; भव-भोगादि विरति कार्यकारी जानी। सम्यक्त्व आचरण रीति उपादेय जानी। ऐसा व्यवहार तत्वसौं मिल्या, विचार हेय-उपादेयका सम्यग भेदकौं लिये हो है। इस व्यवहारकै होत निज सम्यक् स्वरूपकौं मन-इन्द्रिय उपयोग निरोधि शुद्ध अनुभवै। निज श्रद्धान सिद्ध समान स्वरूपका करै। तत्त्व सातका मेल नहीं। निज शुद्ध तत्त्व अनुभव गोचर करै। निश्चय करि श्रद्धानमैं आपकौं परमात्मा शुद्ध है। निश्चय करि ज्ञान परमात्माका जानपणा केवलज्ञान जातिनैं जानै। स्तोक सम्यग-ज्ञानैं सब सम्यग्ज्ञानकौं प्रतीतिमैं जानै। स्वसंवेदमें जानि रूप करि अपना स्वरूप केवलज्ञानमैं ठीक जान्या। थोरे ज्ञानमैं बहुत ज्ञानकी प्रतीति आई। निश्चय करि स्वरूप जान्या सो निश्चयज्ञान परिणति करि स्वरूपमें आचरना स्वरूपाचरण है। परमात्मा का श्रद्धान ज्ञान निश्चय करि केतेक ज्ञानादि शुद्ध शक्ति करि करि भया। तैसैं ही आचरण भया॥

निश्चय नय परमात्मा है। परिणति वैसी ही निश्चय रूप परिणई है। ये निश्चय रत्नत्रय प्रथम व्यवहार रत्नत्रय भये होय हैं। तातैं व्यवहार रत्नत्रय साधक, निश्चय रत्नत्रय साध्य है। सम्यग्दृष्टि कै विरति व्यवहार परिणति साधक है, तहां चा-

रित्र शक्ति मुख्य साध्य है। सो कहिये है। विरति परिणति कहिये रति नाहीं। ताके भेद विषयनमैं रति नाहीं, कषायनमैं रति नाहीं. अशुभाचरणका त्याग, शुभाचरणमैं हू रति नाहीं, कर्म करतूति में रति नाहीं। ज्यौं ज्यौं पर-रति-भाव तजै, त्यौं त्यौं स्वरूप विषैं थिरता विश्राम और आचरण होय, तहां चारित्र कहिये। परिणति शुद्धता प्रगटै चारित्र शक्ति मुख्य साध्य है। देव शास्त्र गुरुकी भक्ति विनय नमस्कारादि भाव साधक हैं, तहां विषयादि उदासीनतामैं परिणति स्थिरता साध्य है, देव भक्ति, परमात्म व्यक्त शुद्ध चेतना प्रगट अनन्त गुण प्रगट तिनकी पूजा सेवा मनसौं परिपूर्ण प्रीति बाह्य प्रभावना अंतरंग ध्यान गुण वर्णन अवज्ञा अभाव परम उत्साह मन वचन काय धन सर्व भक्ति निमित्त लगावै, अपने प्राण हूं तैं वल्लभ प्राण दुःख मूल जानै, उनकौं अनन्त सुख का कारण जानै, शुद्ध स्वरूप जानि भक्ति करै, शुद्ध स्वरूपका अभिलाषी आप, यातैं उनकी भक्ति रुचि श्रद्धा प्रतीतिनैं करै. शास्त्रकी भक्ति करै, काहेतैं ? अपनो स्वरूप शास्त्रतैं पावै है। संसार दुःखकी हानि स्वरूप भावनातैं होय, सो पावै। स्व-पर-विवेक ग्रन्थतैं प्रगटै। मोक्ष मार्ग

अथवा मोक्षस्वरूप वाणीनैं लहै। तातै शास्त्रभक्ति कही। गुरु मोक्षमार्ग उपदेशै, शान्त मुद्राधारी गुरु, मुद्रा विना वचन बोल्या ही मोक्षमार्ग दिखावै, ऐसै श्री गुरु सर्व दोष रहित तिनकी भक्ति कही। इनकी भक्ति मुक्ति का यह कारण जानि करै। तब भव भोगसौं उदास होय मन स्वरूप ही की स्थिरता चाहै, क्रिया[2] साधै। तातैं उनकी भक्ति साधक है, मनकी स्थिरता साध्य है॥

शुभोपयोगके तीन भेद हैं। क्रिया रूप, भक्ति रूप, गुण-गुणि भेद विचार रूप। सो सातिशय कौं लिये निरतिशयकौं लिये षट्भेद भये, जो सम्यक्त्व सहित सो सातिशय, सम्यक्त्व विना तीनौं निरतिशय। सम्यक्त्व सहितमैं तो नियम है, परम्परा मोक्ष करै ही करै। विना सम्यक्त्व शुभोपयोग संसार सुख दे है, देव पद दे, तहां राजपद दे। तहां देव गुरु शास्त्रकौं निमित्त होय याके लाभ होनो होय तो होय, नहीं तो न होय। कारजको कारण विना नियम है,—(अर्थात् विना कारणके कार्य नहीं होता) ऐसी रीति जानियौं।

---

१ मु० प्रति में यह शब्द नहीं है।

२ मु० प्रति में यह शब्द नहीं है।

या प्रकार शुभोपयोग साधक है, परम्परा मोक्ष साध्य है ॥

अन्तरात्मा भेद ज्ञान करि परसौं भिन्न निज रूप जानै, सिद्ध समान प्रतीति ज्ञान गोचर करै, तब साधक है आप ही आप, निश्चय नय अभेद परमात्मा साध्य है। जहां ज्ञानादि मोक्ष-मार्ग कहिये एक देश स्वसंवेदन शुद्धोपयोग रूप, तहां अभेद ज्ञान मूर्ति आतमा मोक्ष स्वरूप कौं साधै, तातैं अभेद ज्ञान मोक्ष रूप साध्य है। जघन्य ज्ञान तैं उत्कृष्ट ज्ञान पाईये, तातैं जघन्य ज्ञान साधक उत्कृष्ट ज्ञान साध्य है। ज्ञानादि स्तोक करि निश्चय करै, तहां वह निश्चय बढ़ै। जैसैं स्तोक अमलतैं बाह्न्य लीन अमल बहुत बढ़ै, बहुत निश्चय परिणति रूप ज्ञानादि गुण बढ़ैं, सो साध्य हैं। सम्यक्त्वी जीव दर्शन ज्ञान चारित्रकौं साधै, तातैं सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन चारित्र साध्य हैं। सम्यक्त्वी साधक है। सम्यक्त्व ज्ञानादि भाव शुद्ध होय, जब द्रव्य कर्म मिटैं, तब द्रव्य मोक्ष होय, तातैं गुण मोक्षसाधक है, द्रव्य मोक्ष साध्य है। क्षपक श्रेणी चढ़ै जब तद्भव मोक्ष होय, तातैं क्षपक श्रेणी चढ़ना साधक है, तद्भव मोक्ष साध्य है। दरवित लिंग होय,

भावित स्वरूप भाव भाव होय, तब साक्षात् मोक्ष सधै, तातैं दरवितभावित यति व्यवहार साधक हैं, तहां साक्षान्मोक्ष साध्य हैं। भावित मनके विकार विलय भये साक्षान्मोक्ष होय, तातैं भावित मनादिरीति विलय साधक है, साक्षान्मोक्ष रूप साध्य है॥

जहां पौद्गलिक कर्म खिरणा साधक है, काहेत? पुद्गलकर्म विपाक आये मनो-विकार उपजै है, तातैं पुद्गल ही खिरि जाय, तब मनो-विकार कहां तैं रहै? तातैं मनोविकार विलय हवना (होना) साध्य है, कर्म खिरणा साधक है। जो परमाणु मात्र भी परिग्रह होय तौ ममताभाव होय ही होय, तातैं परमाणुमात्र परिग्रह साधक है, ममताभाव साध्य है। सो मिथ्यात्वतैं संसार भ्रमै तातैं मिथ्यात्व साधक, संसार भ्रमण साध्य है। सम्यक्त्व भये मोक्ष होय, तातैं सम्यक्त्व साधक है, मोक्ष होना साध्य है। जैसी काल लब्धि आवै, तैसी ही स्वभाव सिद्धि होय, तातैं काल लब्धि साधक है, तैसा ही स्वभाव हवना (होना) साध्य है। साधक साध्य भेद अनेक हैं, सो जाननै॥

शब्द साधक है, अर्थ साध्य है। अर्थ साधक

है, ज्ञानदरस साध्य है। स्थिरता साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, कर्म क्षरणा साध्य है। कर्म क्षरणा साधक है, द्रव्य मोक्ष साध्य है। राग-द्वेष-मोह अभाव साधक है, संसारभाव साध्य है। धर्म साधक है, परमपद साध्य है। स्व-विचार प्रतीति रूप साधक है, अनाकुलभाव साध्य है। समाधि साधक है, निजशुद्ध स्वरूप साध्य है। स्याद्वाद साधक है, यथार्थ पदार्थ की साधना साध्य है। भली भावना साधक है, विशुद्ध-ज्ञान-कला साध्य है। विशुद्धज्ञान कला साधक है, निजपरमात्मा साध्य है। विवेक साधक है, कार्य साध्य है। धर्म ध्यान साधक है, शुक्ल ध्यान साध्य है। शुक्ल ध्यान साधक है मोक्ष साक्षात् साध्य है। वीतरागभाव साधक है, कर्म अबंध साध्य है। संवर साधक है, निर्जरा साध्य है। निर्जरा साधक है, मोक्ष साध्य है। चिद्विकारभाव साधक है, शुद्धोपयोग साध्य है। द्रव्यश्रुत सम्यगवगाहन साधक है, भावश्रुत साध्य है। भावश्रुत साधक है, केवलज्ञान साध्य है। चेतनमें चित्त लीन करना साधक है,, अनुभव साध्य है। अनुभव साधक है, मोक्ष साध्य है। नयभंगी साधक है, प्रमाण भंगी साध्य है।

प्रमाण भंगी साधक है, वस्तु सिद्धि करना साध्य है। शास्त्र सम्यक् अवगाहन साधक है, श्रद्धा गुणज्ञता साध्य है। श्रद्धागुण साधक है, परमार्थ पावना साध्य है। यतिजन सेवा साधक है,आत्म-हित साध्य है। विनय साधक है, विद्यालाभ साध्य है। तत्व श्रद्धान साधक है, निश्चय सम्यक्त्व साध्य है। देव शास्त्र गुरुकी प्रतीति साधक है, तत्त्व पावना साध्य है। तत्वामृत पीवना साधक है, संसार खेद मेटना साध्य है। मोक्ष मार्ग साधक है, संसार खेद मेटना साध्य है।

मोक्ष-मार्ग साधक है, मोक्ष साध्य है। ध्यान साधक है, मनोविकार-विलय साध्य है। ध्यानाभ्यास साधक है, ध्यानसिद्धि साध्य है। सूत्र तात्पर्य साधक है, शास्त्र तात्पर्य साध्य है। नियम साधक है, निश्चय पद पावना साध्य है। नय प्रमाण निक्षेप साधक है, न्याय स्थापना साध्य है। सम्यक् प्रकार हेय उपादेय जानना साधक है, निर्विकल्प निजरस पीवना साध्य है। परवस्तु-विरक्तता साधक है, निज वस्तु प्राप्ति साध्य है। पर दया साधक है, व्यवहार धर्म साध्य है। स्व-दया साधक है, निज धर्म साध्य है। संवेगादि

आठ गुण साधक हैं, सम्यक्त्व साध्य है। चेतन भावना साधक है, सहज सुख साध्य है। प्राणायाम साधक है, मनोवशीकरण साध्य है। धारणा साधक है, ध्यान साध्य है। ध्यान साधक है, समाधि साध्य है। आत्म रुचि साधक है, अखण्ड-सुख साध्य है। नय साधक है, अनेकान्त साध्य है। प्रमाण साधक है, वस्तु प्रसिद्ध करना साध्य है। वस्तु ग्रहण साधक है, सकल कार्य सामर्थ्य साध्य है। परपरिणति साधक है, भव दुःख साध्य है। निज परिणति साधक है, स्वरूपानन्द साध्य है। ऐसैं साधक साध्य के अनेक भेद जानि निज अनुभव करिये। ये सब स्वरूप आनन्द पायवे कौं बताये हैं। कर्म कल्पना कल्पित[1] है। आत्मा सहज अनादि सिद्ध है। अनन्त सुख रूप है। अनन्त गुण महिमा कौं धरै है। वीतराग भावना तैं शुद्ध उपयोग धारि स्वरूप समाधि मैं लीन होय स्वसंवेदन ज्ञान परिणति करि परमात्मा प्रकट कीजै ॥

कोई कहेगा? आज के समय में निज स्वरूप

---

१ शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर।
मुकति-पंथ साधन यहै, वागजाल सब और ॥
बनारसीदास कृत, नाटक समयसार ॥ १२६ ॥

की प्राप्ति कठिन है, बहिरात्मा तो परिग्रहवंत है, तिसतैं स्वरूप पावने की चाहि मेटि? किन्तु; आजसौं अधिक परिग्रह चतुर्थकालवर्ती, महापुण्यवंत नर चक्रवर्ती आदिक तिनकै था, सो इसकैं तौ थोरा है, सो परिग्रह जोरावरी इसके परिणामन मैं न आवे है। यौं ही दौरि दौरि परिग्रह मैं

---

१ बाह्य परिग्रह चाहे थाड़ा या बहुत कितना हो क्यों न रहे, किन्तु उसमें विशेषता मूर्छा, गृद्धता या अत्यासक्ति की है। जो जितना ममत्व परिणाम वाला होगा वह उतना ही अधिक परिग्रही है, किन्तु जिसके ममत्व परिणाम जितना कम होगा वह उतना ही कम परिग्रही है, भरत चक्रवर्ती षट्खण्ड की विभूति के धारक थे, परन्तु वे उसमें आसक्त नहीं थे, वे उसे कर्मोदय का विपाक समझते थे, इसी कारण उस परिग्रह में रहते हुए भी नाम मात्र के परिग्रही थे। परन्तु जो बाह्य में दरिद्री है किन्तु अभ्यन्तर में अत्यन्त मूर्छा से युक्त है, वह बाह्य सामग्री के सचय के बिना भी बहु परिग्रही है। दूसरे बाह्य परिग्रह कितना भी क्यों न रहे, ज्ञानी जीव उसे अपना नहीं मानता, अत वह जोरावरी या जबर्दस्ती से किसी का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। किन्तु ज्यों ही अपने परिणाम बिगड़ते या विकृत होते हैं तब वह भी निमित्त कारण हो जाता है। अत. केवल बाह्य वस्तु को दोष देना उचित नहीं है। अपनी सराग परिणति ही घातक और बन्ध करती है। बनारसीदासजी ने ठीक कहा है कि—

ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोय।
चित उदास करणी करे, करम बन्ध नहि होय॥

घुकै (घुसता) है। जब ठालौ (खाली) होय, तब विकथा करै। तब स्वरूप के परिणाम करै, तौ कौन रोकै? पर-परिणाम सुगम, निज-परिणाम विषम बनावै है। देखौ अचिरज की बात, देखै है जानै है देख्यौ न जाय जान्यौ न जाय, ऐसैं कहत लाज हू न आवै। संसार चातुरीकौं चतुर आप जानिवेकौ शठ ऐसौ हठ धिठोही (धृष्टता) सौं पकरि पकरि पर-रत विसनकौं गाढौ भयौ। स्वभाव बुद्धि विसारी, भारी भव बांधि अंध-धंध मैं धायौ, न लखायौ आप, अब श्रीगुरु प्रताप तैं संत संग मिलाय, जातैं मिटै भवताप, आप आपही मैं पावै, ज्ञान लक्षण लखावै, आप चिंतन धरावै, निज परिणति बढ़ावै, निजमांहिं लव लावै, सहज स्व-रस कौं पावै, कर्म बन्धन मिटावै, निज परिणति भाव आपमैं लगावै, वर चिद् गुण पर्यायकौं ध्यावै, तब हर्ष उपावै, मन विश्राम आवै, रसास्वादकौं जु पावै, निज अनुभव कहावै. ताकौं दूरि कौ (कौन) बतावै? भव-भांवरी घटावै, आप अलख लखावै, चिदानन्द दरसावै, अविनाशी रस पावै, जाको जस भव्य गावै,

---

१ मु० प्रति में यह वाक्य नहीं है।

जाकी महिमा अपार, जानैं मिटै भव भार, महा ऐसौ समयसार[1] अविकार जानि लीजिये ॥

जीजिये सदैव, कीजिये सो ही, वो ही द्रोही न होय, आप अवलोय, शुद्ध उपयोग थाय, पर को वियोग भाय, सहज लखाय, जिन आगम में कही बात, तिहुलोक नाथ कहै विख्यात, निज अनुराग सेती धरि वीतरागभाव, यह दाव पायो, फिरि मिलै न उपाय, ऐसो भाव धरि, जातैं मिटै भव फंद, तातैं मानथंभ मेटि, माया जलकौं जलाय, क्रोध-अग्नि बुझाय, लोभलहरि मिटाय, विषयभावना न भाय, चिदानन्द राय पद देखौ देखौ। निज आपकौ गवेषौ (खोजो) परवेदना की उच्छेदना करि, सहज भाव धरि, अतर्वेदी होय, आनन्दधारा कौं देखि, परमात्मनिश्चयरूप देखि ॥

इस परपरिणति-नारी सौं ललचाये, कुमति-सखी संगि गति-गतिमैं डोलै, निजपरिणतिराणीके वियोगतैं बहु दुःखी भये। अब निजपरिणति-

१ आतम दरब जाकौ कारण सदैव महा, ऐसौ निज चेतन मैं भाव अविकारी है। ताही की धरण हारी जीव की सकति ऐसी, तासौं जीव जीवें तिहुकाल गुणधारी हैं ॥ द्रव्य गुण पर्याय ये तो जीव दशा सब, इन ही में वस्तु जीव जीवनता सारी है। सबकौ अधार सार महिमा अपार जाकी, जीवन सकति 'दीप' जीव सुखकारी है ॥ ५९ ॥

तियासौं अतीन्द्रिय भोग भोगवो, जहां सहज अविनाशी रस वर्षे है। अरूपीकमैं पद्मरागमणि कल्प (करि) आनन्द झूठे ही मानौ हौ। ऐसें परमैं निज-भाव कल्पा[1] सो झूठे ही हौंस पूरी करो, सो न होय। आकाश में देव एक, ताके करमैं चिन्तामणि, ताको प्रतिबिम्ब अपने बासन (बर्तन) के जल में देख्यौ, मन में विचारे मेरे चिन्तामणि है, ताके भरोसें विराने (दूसरों के) लाखौं देने किये, तौ कहा सिद्धि है? झूठ कल्पना तुमहीकौ दुखदाई है। सांचौ चिन्तामणि घर मैं, ताकौ न देखौ! अरु प्रतिबिम्बमैं (चिन्तामणि) हाथि न परै। बहुत खेद करो, सो कहा बड़ाई? अब अपनो सांचौ अखण्ड पद देखो। ब्रह्मसरोवर आनन्द-सुधारसकरि पूर्ण, जाकौ सुधारस पीवत अमर होय, सो रस पीवनो॥

---

१ ज्ञान उपयोग योग जाकौ न वियोग हुवौ, निहचै निहारै एक तिहूं लोक भूप है। चेतन अनन्त रूप सासतौ विराजमान, गति गति भ्रम्यो तोऊ अमल अनूप है॥ जैसैं मणि माहिं कोऊ कांच खंड मानै तौऊ, महिमा न जाय वामैं वाही को सरूप है। ऐसैं हो सभारि कै सरूव को विचार्यौ मैं, अनादि को अखण्ड मेरो चिदानन्द रूप है॥ ३०॥

'ज्ञान दर्पण'

अथ अनुभववर्णनम् ॥

पौद्‌गलिक कर्म ही करि पांच इन्द्रिय छठे मन रूप बन्या संज्ञी देह, तिस देह विषैं तिस प्रमाण तिष्ठ्या हुआ भी जीवद्रव्य, इन्द्रिय मन संज्ञा नाम पावै। भाव-इन्द्रिय, भाव-मन छह प्रकार उपयोग परिणाम भी भेद पड़्या है। एक-एक उपयोग परिणाम एककौं देखै जानै[१]। मन उपयोग परिणाम चिन्ता विकल्प देखै जानै। परिणाम विचार विकल्प चिन्तारूप मानना होय। तिन हवने (होनैं) सौं तिस परिणाम भेदकौं मन नाम कह्या। देखि, संत! अवर अब इन्हींकौं एक ज्ञानका नाम लेइ कथन करूं हौं (हूं) तिस ज्ञान (का) कथन (करने) करि दर्शनादि सब गुण आय गये। इन मन-इन्द्रिय भेदोंकी ज्ञानकी पर्यायका नाम मति संज्ञा कहिये। मन, भेदज्ञान (विशेषज्ञान) करि अर्थस्यौं अर्थान्तर विशेष जानै, इस जाननें कौ श्रुत संज्ञा कहिये। दोन्यौं ज्ञानपर्याय कुरूप (विपरीत रूप) सम्यग्रूप कहिये। मिथ्याती कैं मतिश्रुत रूप

१ इसका विस्तृत विवेचन आत्मावलोकन के "अनुभव विवरण" के प्रकरण में देखिये।

जानना है, तिस जाननैं विषैं स्व-पर व्यापक अव्यापक की जाति नाहीं। तिस ज्ञेयकौं आप लखै अथवा लखता ही नाहीं। मिथ्यातीकैं जाननमैं कुरूपता-विपरीतता है। सम्यग्दृष्टि परकौं पर जानैं है, स्वकौं स्व जानै है। चारित्र मैं मिथ्याती परकौं निजरूप अवलंबै है। सम्यग्दृष्टि निजकौं निज अवलंबै है। सम्यक्त्व सविकल्प-निर्विकल्प रूपसौं दोय प्रकार है। जघन्य ज्ञानीकैं जब तिस परज्ञेयकौं अव्यापक पररूपत्व जानि, आपकौं जाननरूप (ज्ञायकरूप) व्यापक जानै सो तो सविकल्प सम्यक्त्व। अवरु जु आप जाननरूप (ज्ञायकरूप) आपकौं ही व्याप्य-व्यापक जान्या करै सो निर्विकल्प रूप सम्यक्त्व। अवरु जो एक बेर एक ही समय विषैं (स्व) स्वकौं सर्वस्व-करि लखैं, तथा सर्व परकौं पर-करि लखैं तहां चारित्र परम शुद्ध है॥

तिस सम्यक्तताकौं परम-सर्वथा-सम्यक्तता कहिये सो केवल दर्शन-ज्ञान पर्याय विषैं पाइये। अवरु जिस ज्ञेय प्रति प्रयुंजै (उपयोग लगावै) तिसही कौं जानै और कौ न जानैं। मिथ्यातीकैं वा सम्यक्दृष्टिकैं ज्ञेय प्रयुंजन ज्ञान तो एक सा है, परन्तु भेद इतना ही है कि मिथ्याती जेता जानै

तैता अयथार्थरूप साधै। सम्यग्दृष्टि तिस ही भावकौं जानै तितनैं ही यथार्थरूप साधै। तातैं तिस सम्यग्दृष्टिकैं चारित्र अशुद्ध परिणामन सौं बंध होय सकता नाहीं। तिन उपयोग परिणामनिैं बंध आस्रव निन (रूप) अशुद्ध परिणामन की शक्ति कीलि राखी है। तातैं निरास्रव निरबन्ध है। अरु सब एक आपहीकौं आप चित्त वस्तु व्यापक व्याप्यता करि प्रत्यक्ष आप ही देखन लगैं जानन लगैं, अरु ते चारित्र परिणाम निज उपयोगमय चित्तवस्तु विषैं थिरी भूत शुद्ध वीतराग मग्नरूप प्रवर्तैं। तिनही चारित्र परिणामजन्य निजानन्द होय है। यौं करि सम्यग्दृष्टिकैं दर्शनज्ञान चारित्र सहित परिणाम निज चित्त वस्तु हीकौं व्याप्यव्यापकरूप देखतैं, जानतैं, आचरतैं, निजास्वाद लेय निजस्वाद दशा का नाम स्वानुभव कहिये[१]।

स्वानुभव होतैं निर्विकल्प सम्यक्त्व उपजै। (उसे) स्वानुभव कहौ, वा कोई निर्विकल्पदशा कहौ, वा आत्म सन्मुख उपयोग कहौ, वा भावमति भावश्रुत कहौ, वा स्वसंवेदन भाव, वस्तुमगन भाव, वा स्वआचरण कहौ, थिरता कहौ, विश्राम

---

१ वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम ॥१७॥ नाटक समयसार

कहौ, स्वसुख कहौ, इन्द्रीमनातीत भाव, शुद्धोपयोग स्वरूप मग्न, वा निश्चय भाव, स्वरससाम्य भाव, समाधि भाव, वीतराग भाव, अद्वैतावलंबी भाव, चित्त निरोधभाव, निजधर्म भाव, यथास्वाद रूप यौं करि स्वानुभव के बहुत नाम हैं। तथापि एक स्व-स्वादरूप अनुभवदशा मुख्य नाम जानना। जो सम्यग्दृष्टि चउथे (चतुर्थगुणस्थान) का है। तिसकैं तो स्वानुभवका काल लघु, अंतर्मुहूर्त तांई रहै है। (फिर) वह (स्वानुभव बहुत) काल पीछै होइ है। तिसतैं (अविरत सम्यग्दृष्टी की अपेक्षा) देशव्रती का स्वानुभव रहने का काल बड़ा है। अरु (स्वानुभव) थोरे हीं काल पीछें होइ है। सर्व विरति के स्वानुभव दीर्घ अन्तर्मुहूर्त ताईं रहै है। ध्यानस्थों भी होय है। अति थोरे थोरे काल पीछे स्वानुभव हुआ ही करै, बारंबार अवरु सात मैं[1]। तेई परिणाम पूर्वस्वानुभव रूप भये थे तेनौ स्वानुभव रूप रहै, पै तहां सौं मुख्य रूप कर्मधारासौं निकसि निकसि स्व रस-स्वाद अनुभव रूप होय करि चढ़ते चले हैं। ज्यौं ज्यौं आगे का काल आवै है, त्यौं त्यौं अवरु अवरु परिणाम स्वस्वादरस अनुभव रूप होय करि बढ़ते

---

१ सातवें गुणस्थान में स्वानुभवदशा बारम्बार हुआ ही करती है।

चलैं हैं। यौं करि तहां सौं अनुभवदशा का परि-णाम बढ़ने करि पलटनि होय है, सो क्षीणमोह अन्त लगु (तक) जाननी।

भो भव्य ! तू एक बात सुनि—हम एक बार अवरु फिर कहैं हैं, यह स्वानुभव दशा स्वरस-मय रूप सुख है, शान्ति विश्राम है, स्थिररूप है, निज कल्याण है, चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है, मुख्य मोक्षराह है, ऐसा है। अरु यहु सम्यक् सविकल्प दशा यद्यपि उपयोग निरमल है तथापि यहां चारित्र परिणाम परालंब अशुद्ध चंचल होनैं संतै सविकल्प दशा दुःख है। तृष्णा करि चंचल है। पुण्यपापरूप कलाप है। उद्वेगता है। असंतोषरूप है। ऐसैं ऐसैं विलापरूप है। चारित्र परिणाम दोन्यौं तैं अवस्था आप विषैं देखी है। तिसतैं भला यह जु तूं स्वानुभव रूप रहनेका उद्यम राख्या कर, यह हमारा वचन व्यवहार करि उप-देश कथन है। जेती जेती विशुद्धता थिरता गुण-स्थान माफिक बढ़ी तेता तेता सुख बढ्या। बारमैं (गुणस्थान) लगु (तक) कषाय घटनैंनैं थिरता बढ़ी। मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमनैं स्व-संवेदन रस बढ़े। स्वसंवेदन थिरता करि उपज्यौ रसास्वाद स्वानुभव सो अनन्त सुख मूल है ॥

सो अनुभव धाराधर (मूँसलाधार वर्षा) जगै दुःख दावानल रंच न रहतु है। स्वानुभव (ही को) भव-वास-घटा भानवे कौं (नाश करने के लिये) परम प्रचण्ड पवन मुनिजन कहतु हैं[1]। अनुभव-सुधापान करि भव्य अमर अनेक भये। परम पूज्य पद कौं अनुभव ही करै है। सब वेद पुराण या विनु निरर्थक है। स्मृति विस्मृति है। शास्त्रार्थ व्यर्थ है। पूजा भजन मोह है। अनुभव बिना निर्विघ्न कार्य विघ्न है। परमेश्वर कथा सो भी झूंठी है। तप भी झूंठ है। तीर्थ सेवन झूंठ है॥

तर्क पुराण व्याकरण खेद है। अनुभव बिना ग्राम विषैं गाय, श्वान, वन मैं हिरणादि ज्यों अज्ञान तपसी (है), अनुभव प्रसादतैं नर कहूँ रहौ सदा पूज्य हैं। अनुभव आनन्द, अनुभव धर्म अनुभव परमपद, अनुभव-अनन्त-गुण-रस-सागर अनुभवतैं सिद्ध है, अनुपम ज्योति, अमित तेज

---

१ अनुभौ अखण्ड रस धाराधर जग्यौ जहां, तहां दुख दावानल रंच न रहतु है। करम निवास भव वास घटा भानवेकौं, परम प्रचण्ड पौनि मुनिजन कहतु हैं॥ याकौ रसपियैं फिर काहू को न इच्छा होय, यह सुख दानी सब जगमें महतु है। आनन्द कौ धाम अभिराम यह सन्तन कौ, याही के धरैया पद सासतौ लहतु है॥ १२७॥ 'ज्ञानदर्पण'

अखण्ड, अचल, अमल अतुल, अबाधित, अरूप अजर, अमर, अविनाशी, अलख, अछेद, अभेद अक्रिय, अमूर्तिक, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, अविगत, आनन्दमय चिदानन्द इत्यादि अनन्त परमेश्वर का विशेषण सर्व अनुभव सिद्धितैं करता है। तातैं अनुभव सार है। मोक्ष को निदान सब विधान को शिरोमणि, सुख को निधान, अमलान अनुभव है। अनुभवी जीव मुनिजन के चरणारविंद इन्द्रादि सेवैं हैं। तातैं अनुभव

---

१ पर पद आपो मानि जगमें अनादि भम्यो, पायो न स्वरूप जो अनादि सुख थान है। राग द्वेष भावन में भव थिति बाधा महा, विना भेद ज्ञान भूल्यो गुणको निधान है॥ अचल अखण्ड ज्ञान ज्योति को प्रकाश लियें, घरमें ही देव चिदानन्द भगवान है। कहै 'दीपचन्द' आप इन्द हू से पाय परै, अनुभौ प्रसाद पद पावै निरवान है॥ १२४॥

दोहा—चिद लक्षण पहिचान तैं, उपजै आनँद आप।
अनुभौ सहज सरूप को, जग मैं पुण्य प्रताप॥ १२५॥

जगमें अनादि यति जेते पद धारि आये, तेउ सब तिरे लहि अनुभौ निधान कों। याके विनु पाये मुनि हू सुपद निंदत हैं, यह सुख सिन्धु दरसावै भगवान को॥ नारकी हू निकसि जे तीर्थंकर पद पावै, अनुभौ प्रभाव पहुँचावै निरवाण को। अनुभौ अनन्त गुण धाम के धरैया हो कौ, तिहु लोक पूजै हित जानि गुणवान को॥ १२६॥

दोहा—गुण अनन्त के रस सबै, अनुभौ रस के माहि। यातैं अनुभौ सारिखो और दूसरो नांहि॥ १५३॥ पच परम गुरु जे भये, जे होंगे जग माहि। ते अनुभव परसाद तैं, यामैं धोखो नाहि॥ १५४॥ 'ज्ञान दर्पण'

करि, ये ग्रन्थ ग्रन्थन मैं अनुभव की प्रशंसा कही है। अनुभव विना साध्य सिद्धि कहूँ नांहीं। अनन्त चेतना चिन्ह रूप अनन्त गुण मण्डित, अनन्त शक्ति धारक, आतम पद को रसास्वाद अनुभव कहिये।

बारंबार सर्व ग्रन्थ को सार, अविकार अनुभव है। अनुभव शासतौ चिंतामणि है। अनुभव अविनाशी रस कूप है[1]। मोक्ष रूप अनुभव है। तत्वार्थ सार अनुभव है। जगत उधारण अनुभव है। अनुभवतैं आन कोई उच्च पद नाहीं। तातैं अनुभव सदा स्वरूप कौ करिये। अनुभव की महिमा अनन्त है। कहां लौ बताइये। आठ कर्म (आत्म) प्रदेश परि आपणी थिति करि बैठे सर्व पुद्गल का ठाठ है। तिनके विपाक के उदय

---

१ अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रस कूप।
अनुभव मारग मोख कौ, अनुभव मोख सरूप ॥ १८ ॥

अनुभौ के रस कौं रसायन कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहु तीरथ की ठौर है। अनुभौ की जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनुभौ अधोरसासौं ऊरध को दौर है॥ अनुभौ की केलि यहै कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौ कौ स्वाद पंच अमृत को कौर है। अनुभौ करम तौरै परम सौं प्रीति जोरै, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है॥१९॥ नाटक समयसार उत्थानिका १८,१९

करि चिद विकार भया, सो विकार जीव का है। वर्गणा नो कर्म द्रव्य कर्म रूप सब पुद्गल हैं। भाव जीवके हैं। एक सौ अठतालीस प्रकृति वर्गणा जड़ वणी है। उनके विपाक उदय व्यक्तता (का) निमित्त पाय चिदविकार भया, सो विकार का स्वांग जीवनैं धर्‌या है। इस (यह) ज्ञेय रंजक अशुद्धता भाव, उस शुद्ध भाव की शक्ति अशुद्ध भई, तब भया है। अशुद्ध परिणा-मन के निमित्ततैं यह कर्ममल लगा[1] है। पर इसनैं किया, तातैं इसका है। इसका मूलभाव नाहीं. काहेतैं? बादर (मेघ) की घटा लाल श्याम पीत हरित रूप भये आकाश वैसा न भया। जैसैं रतन परि मांटी बहुत लपटी परि (परन्तु) रतन का प्रकाश मांटी के लपटैं न गया। अंतर शक्ति ज्यौं की त्यौं है। त्यौं आत्मा के अशुद्ध भाव भयें आतमा का दरसन ज्ञान शक्ति अंतर (आभ्यन्तर में) ज्यौं की त्यौं है। पर पुद्गल का नाटक बन्या है। सो पुद्गल का खेल जान, तूँ अपने आतमा का खेल मति जानै॥

सो कहिये है, दशधा परिग्रह क्षेत्र, बाग, नगर, कूप, वापी, तड़ाग, नदी आदि जेतेक पुद्गल, माता,

१ यह पंक्ति मु० प्रति में अशुद्ध है।

पिता, कलत्र, पुत्र, पुत्री, वधू, बन्धु स्वजनादि, जावंत सर्प सिंह व्याघ्र गज महिषादि, जावंत दुष्ट शब्द अक्षर अनक्षर शब्दादिवान वाच्य स्नान भोग संजोग वियोग क्रिया, जावंत परिग्रह मिलाप सो बड़ा परिग्रह, नाश सो दलिद्रादि क्रिया, जावंत चलना बैठना हलना बोलना कांपनादि क्रिया, जावत लड़ना भिड़ना चढ़ना, उतरना कूद-ना नाचना खेलना गावना बजावना आदि जावंत क्रिया सर्व पुद्गल का खेल जानु। नर, नारक, ति-र्यंच, देव इनके विभव भोगकरण विषय रूप इन्द्रियनि की क्रियादि सब पुद्गल (का) नाटक है। द्रव्यकर्म, नोकर्मादि सब पुद्गल अखारा है। तामैं तूं चिदानन्द रंजित होय अपना जानै है। अपनें दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनंत गुणका अखारा परणनि पातरा नाचैं, स्वरूप रस उपजावैं, जेते गुणकौं वेदैं, द्रव्य वेदैं, सब भाव भये (स्वरूप) सत्ता मृदङ्ग प्रमेय ताल इत्यादि सब निज अखारा है। ऐसें अपने निज अखारे मैं न रंजि, परके अखारे मैं ममत्व किया जिसका जन्मादि दुःखफल आपने पाया, अब अपने (आपका) सहज स्वादी होय पर-प्रेम मिटाय चेतना प्रकाश का विलास रूप अतीन्द्रिय भोग भोगि, कहा झूठे ही सूनैं जड़ मैं आपा मानै

हैं। अर परकौं कहै—हमकौं यह दुःख दे है। (लेकिन) यामैं शक्ति दुःख देने की नाहीं। विराने सिर झूंठा उलाहना दे है, अपनी हरामजादगीकौं न देखै है। अचेतनकौं नचावत फिरत है, सो लाजहू न आवत है। मडे सौं (मुर्दा सों) सगाई करि अब हम इस सौं ब्याह करि संबंध करैंगे सो ऐसी बात लोक मैं हू निंद्य है। तुम तौ अनन्तज्ञान के धारी चिदानन्द हौ। अनादि झूंठी विडम्बना जड़मौं आपा माननैं की मेटो। तुम एक (मात्र) पर-मानि छांड़ौ। पराचरण ही तैं तुमारा दर्शन ज्ञान मैं लाभ न भया है। यदि देखनैं जाननै तैं जो बंध होता, तो सिद्ध लोकालोककौं देखते हैं, जानते हैं तेहू बंधते, तिसतैं परिणाम तादात्म्य नाहीं। तातैं सिद्ध भगवान न बंधैं हैं। परिणामहीतैं संसार, परिणामहीतैं मोक्ष मानि, परिणाम ही राग-द्वेष-मोह-परिणाम करै। इनका जनन हूं (रचा भी) परिणाम (ही) करै, ज्ञान दर्शन मैं राग द्वेष नाहीं, वे देखवे जानवे मात्र हैं। इसकी विकारतातैं वे हू विकारी कहावें। यदि 'देखना जानना राग द्वेष मोह करि होय तो बंध, राग द्वेष मोह न होय तो न बंधै। यह परिणाम शुद्धता अभव्यकै न होय, तातैं ज्ञान दर्शन शुद्ध

न होय। भव्यकैं परिणाम स्वरूपाचरण के होंय तातैं ज्ञान दर्शन शुद्ध होय। उक्तं च

स्वानुष्ठान विशुद्धे दृग्बोधे जायते[1] कुतो जन्म।
उदिते गभस्तिमालिनि किं न विनश्यति तमो नैश्यम्[2] ॥११॥

पद्मनन्दि पच्चीसी के निश्चय पचाशत प्रकरण

यहां कोई प्रश्न करै कि वस्तु देखिये नाहीं, जानिये नाहीं, परिणाम वामैं कैसैं दीजिये? ताका समाधान—पर दीखता है जानिये है सो परका देखने वाला उपयोग है, तौ देखै है, ज्ञान है तौ जानै है। उपयोग तौ ठावा (निश्चल, स्थिर) भया नास्तिरूप हुआ, जो यह उपयोग गहर्‍या तिस ही मैं परिणाम धरि थिरता धरि आचरण करि विश्राम गहूँ। येता ही (इतना ही) परिणाम शुद्ध करने का काम है उक्तं च—"उवओगमओ जीवो" इति वचनात्। जातैं परिणाम वस्तु वेद्य स्वरूप लाभ ले, वस्तु में लीन होय है। स्वरूप

१ क० ख० प्रति में 'जृ भते' पाठ पाया जाता है।

२ इस पद्य का भावानुवाद इस प्रकार है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार विनाश होजाता है इसी प्रकार सम्यग्चारित्र से विशुद्ध दर्शन ज्ञान के होने पर फिर संसार में जन्म नहीं होता।

निवास परिणाम ही करै हैं। उत्पाद व्यय ध्रुव (ध्रौव्य) परिणाम में आया, उत्पाद व्यय ध्रौव्य मैं सत् आया[1]। सत् तामैं स्वरूप सब आय गया तातैं परिणाम शुद्धता मैं सब शुद्धता आई॥ उक्तं च—

जीवो परिणामदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणाम सब्भावो[2]॥

प्रवचनसार १-९

परिणाम सर्व स्व-स्वरूपका है। पराचरणके दोय भेद हैं—द्रव्य पराचरण और भावपराचरण किन्तु नोकर्म उपचार (द्रव्य) पराचरण है, परंपरा करि अनादि उपचार है। देवादिक देहका धारण सादि उपचार है। द्रव्यकर्म जोग अनादि उपचार है। भाव कर्म अशुद्ध निश्चय नय करि है। द्रव्य कर्म नोकर्मका द्रव्यपराचरण उपचारतैं है। भाव पराचरण राग द्वेष मोह है तिसका आचरण है। कोई प्रश्न करै—जो रागादि जीवके भाव हैं, पर भाव सप-रसादि (स्पर्श रस आदि) हैं। रागा-

१ उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तसत्, सद्द्रव्य लक्षणम्, तत्त्वार्थसूत्र ५-२९ ३०

२ इसका भावानुवाद निम्न प्रकार है:—जब परिणाम स्वभावधारी यह जीव शुभ अथवा अशुभ रूप परिणामों से परिणमता है तब शुभ व अशुभ होता है, और जब शुद्ध परिणामों से परिणमता है तब निश्चयसे शुद्ध होता है।

दिककौं परभाव क्यों कहे ? ताका समाधान—शुद्ध निश्चय नयसे रागादि जीवके नहीं, ये भी पर हैं, काहे तैं ? ये भावकर्म हैं इनके नाशतैं मुक्ति है। पर हैं तौ छूटे हैं, तातैं पर ही कहिये। जब यह रागादिकौं अपनें न मानेंगा तब भव बंध पद्धति मिटैगी। तिसतैं पर रागादि तजि शुद्ध दर्शनज्ञान चारित्र हैं, सो आप जानि ग्रहै, यह मुक्तीका मूल है[1]। परिणाम जींधकौं (जिधरकौं) धुकै जैसा हो है। तातैं पर-छांडि निज परिणाम स्वरूपमैं लगाओ। उत्पाद व्यय ध्रौव्य षट्गुणी वृद्धि हानि अर्थक्रियाकारक परिणामतैं सधै हैं॥

आगै देवाधिकार लिखिये है॥

काहेतैं ? देव तैं परममङ्गल रूप निजानुभव पाइये है। तातैं देव उपकारी हैं। देव परमात्मा है। अरहंत परमात्मा साकार है। शरीर युक्त हैं। तातैं सिद्ध निराकार हैं। किंचून चरमशरीर तैं आकार तातैं साकार भी कहिये हैं। अरहंत कै

१ सद्गुरु कहे भव्य जीवनिसौं, तोरहु तुरित मोह की जेल। समकित रूप गहौ अपनौं गुन, करहु शुद्ध अनुभव कौ खेल॥ पुद्गल पिण्ड भाव-रागादिक, इनसौं नहीं तुम्हारो मेल। ए जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसैं भिन्न तोय अरु तेल॥ नाटक समयसार॥ १२॥

अघातिकर्म रहे तातैं बाह्य विवक्षा मैं च्यारि गुण व्यक्त न भये। ज्ञान में सब व्यक्त भये। सो कहिये हैं। नामकर्म मनुष्य गति रूप है। तातैं सूक्ष्म बाह्य नहीं। केवलज्ञान मैं व्यक्त है। वेदनी है तातैं बाह्य अबाधित नहीं। अन्तरमें ज्ञानमैं व्यक्त हैं। अवगाह बाह्य नहीं। आपतैं ज्ञानमैं व्यक्त है। अगुरु लघुगोत्रतैं बाह्य व्यक्त नहीं, ज्ञानमैं है। यह अघाति हू तैं व्यक्त नाम न पाया। नाम स्थापना द्रव्य भाव पूज्य हैं अरहंत के नाम लेत ही परमपद की प्राप्ति होय ॥ उक्तं च

जिन सुमरो जिन चिंतवो जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायतहि परम पय, लहिये एक क्षणेन ॥ १ ॥

जिन स्थापनातैं सालंबध्यान करि निरालंब पद पावै है।

कैसी है स्थापना—

किं ब्रह्मैकमयी किमुत्सवमयी श्रेयोमयी किं किमु।
ज्ञानानन्दमयी किमुन्नतमयी किं सर्वशोभामयी ॥
इत्थं किं किमिति प्रकल्प न परैस्त्वन्मूर्तिरुद्वीक्ष्यता (ताम्)
किं सर्वातिगमेव दर्शयति सा ध्यानप्रसादान्महः ॥१॥

मोहोद्दामदवानलप्रशमने पाथोदवृष्टिसमः।
स्रोतो निर्झरणी समीहित विधौ कल्पेन्द्रवल्ली सताम्।

संसार प्रबलान्धकार मथने मार्तण्डचण्ड द्युति- ।
जैनी मूर्तिरुपास्यतां शिव सुखे भव्यः पिपासास्ति चेत्[1] ॥

स्वसंवेदन रूप वीतराग मुद्रा देखि स्वसंवेद भावरूप अपना स्वरूप विचारै—पूर्व ये सराग थे, राग मेटि वीतराग भये। अब मैं सराग हौं, इनकी ज्यौं राग मेटौं तो वीतराग मेरा पद मैं पावौं। निश्चय (से) मैं वीतराग हूं ॥ उक्तं च—

"पिच्छइ अरहो देवो पच्छुर घड़ियो हु दरसय मग्ग"

इति वचनात् ॥ इस स्थापना के निमित्तैं तिहुं काल तिहुं लोक मैं भव्यजीव धरम साधै हैं। तातैं स्थापना परम पूज्य है। द्रव्य जिन द्रव्यजीव

१ इन पद्योंका भावानुवाद इस प्रकार है।—हे भव्य यदि तुझे मोक्ष सुख की पिपासा है, उसे प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा है, तो तुम्हें जैन मूर्ति की उपासना करनी चाहिये। वह मूर्ति क्या ब्रह्मस्वरूप है, क्या उत्सव मय है, श्रेय रूप है? क्या ज्ञानानन्द मय है? क्या उन्नत रूप है और क्या सर्व शोभा से सम्पन्न है? इस तरह से अनेक विकल्पों से क्या? ध्यान के प्रसाद से आपकी मूर्ति को देखने वाले भव्यों को क्या वह सर्वातिग तेजको दिखलाती है? अपितु दिखलाती ही है। और जो मूर्ति मोह रूपी प्रचण्ड दावानल को शान्त करने के लिये मेघ वृष्टि के समान है, जो इच्छित कार्यों को सम्पन्न करने के लिये निर्झरणी (नदी) का स्रोत है, जो सज्जनों के लिये कल्पेन्द्रवली है, कल्पलता के सदृश अभीष्ट फल प्रदान करने वाली है, और संसार रूपी प्रबल अन्धकार को मथन करने के लिये मार्तण्ड की प्रचण्ड द्युति है, सूर्य का प्रबल प्रकाश है। अतः हे भव्य ऐसी उस वीतराग मूर्ति की उपासना जरूर करनी चाहिये।

सोहू भाव पूज्य हैं। तातैं पूज्य भावि नय (से है) अथवा तीन कल्याण तक द्रव्य जिन हैं। सो पूज्य हैं। भाव जिन समोशरणमण्डित अनन्त चतुष्टय युक्त भव्यनकौं तारैं, दिव्यध्वनितैं उपदेश देय करि साक्षात् मोक्षमार्ग की वर्षा करैं, ये परमातमा भावजिन कहिये ॥

आगैं सिद्ध देवका वर्णन कीजिये है ॥ सिद्ध निराकार परमातमा है। अनन्त गुण रूप भये, अपने अनन्त गुणकौं गुणनिकरि पर्यायतैं वेदि, द्रव्य-गुणकौं भोगवै हैं। लोकशिखर पर तिष्ठै हैं षड्गुणी वृद्धि-हानि (रूप) अर्थ पर्याय किंचून चरम देहतैं प्रदेशनि की आकृति-आकार (रूप) व्यंजन पर्याय (से सहित हैं)। उक्तं च—

मोम गयो गलि मूसिमै जारस अम्बर होय।
पुरुषाकारै ज्ञान-मय वस्तु प्रमानौं सोय[1] ॥

---

१ ध्यान हुताशन में अरि इंधन, झोंक दियौ रिपु रोक निवारी।
शोक हरयो भवि लोकनकौ वर, केवलज्ञान मयूख उघारी ॥
लोक अलोक विलोक भये शिव, जन्म जरा मृत पंक पखारी।
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक, तिन्हैं पग धोक त्रिकाल हमारी ॥११॥
तीरथ नाथ प्रनाम करैं, तिनके गुन वर्नन में बुधि हारी।
मोम गयौ गलि मूस मझार, रह्यो तहँ व्योम तदा कृत भारी ॥
लोक गहीर नदी पति नीर, गये तिर तीर भये अविकारी।
सिद्धन थोक बसैं, शिवलोक तिन्हैं पग धोक त्रिकाल हमारी ॥१२॥
'जैन शतक' पं० भूधरदास—सिद्ध स्तुति

देवकौं जानैं, तब स्वरूप अनुभव होय है।

॥ इति देवाधिकार ॥

॥ अथ ज्ञानाधिकारः ॥

ज्ञान लोकालोक सकल ज्ञेयकौं जानैं, निश्चय जानन रूप स्वरूप है ऐसी ज्ञानकी शक्ति है। संसार अवस्थामैं अज्ञानरूप भई है। तौऊ निश्चय तैं निज शक्ति न जाय है। बादरघटाके आवरणतैं सूर्य तेज न जाय, त्यौं ज्ञानावरणनैं ज्ञान न जाय, आवर्‍या जाय नाश न होय। ज्ञान सब गुणमैं बड़ा गुण है। इसमैं अनन्त गुण व्यक्त जानैं। ज्ञान बिना ज्ञेय का ज्ञान न होय। ज्ञेय बिना जानवे योग्य कुछ भी न होना। यातैं ज्ञान प्रधान है। अनन्त गुणात्मक वस्तु तौऊ ज्ञान मात्र ही है। आचार्य बहु ग्रन्थन मैं आतमा ऐसौ कह्यौ। काहे नैं ? "लक्षण प्रसिद्ध्यालक्ष्यप्रसिद्ध्यर्थम्" जैसैं मन्दिर श्वेत कहिये यद्यपि मन्दिर स्पर्श रस श्वेतादि बहु गुण धरै है, तथापि दूरितैं श्वेत गुणकरि भासै, तातैं मुख्यतातैं श्वेत मन्दिर कहिये। प्रसिद्ध लक्षण आत्मामैं ज्ञान है। तातैं ज्ञानमात्र आत्मा कह्यौ। एक एक गुणकी अनंतशक्ति अनंत पर्याय गुणकी एक अनेक भेदादि सब जानैं, ज्ञान बिना

वस्तु सर्वस्व निर्णयरूप स्वरूपकौं न जानै, तातैं ज्ञान प्रधान है। मतिज्ञानादि ज्ञानके पर्याय हैं। सो क्षयोपशम ज्ञान अंश (भेद) शुद्ध भये। तातैं पर्याय ज्ञेयाकार ज्ञानपर्याय करि लोकालोक जानैं है। ज्ञेयका नाश होत है, परि ज्ञानका नाश नाहीं; तातैं जेतौ ज्ञेय तेतौ ज्ञान, मेचक उपयोग लक्षण ज्ञान, उपचार तैं ज्ञान मैं ज्ञेय है। तातैं वस्तु स्वरूप मैं ज्ञेयका विनाश, ज्ञानका विनाश नाहीं॥

यहां कोई तर्क करै—ज्ञान मैं सकल ज्ञेय उपचारतैं हैं। तो सर्वज्ञ पद उपचरित भयो, उपचार झूंठा है। तो कहा सर्वज्ञ पद झूंठ भयो? ताका समाधान—जाकै उपचार ही मात्र मैं लोकालोक भास्यौ, तौ वाकै निश्चय ज्ञानकी महिमा कौन कहै? यह ज्ञान स्वसंवेद नहीं भया सबकौं जानैं, आपके जानें परका जानना थपै (होय) परके जानै[1] स्वका जानना थपै है। परकी अपेक्षा आप है, आपकी अपेक्षा पर है। विवक्षातैं वस्तु सिद्धि है, ज्ञानतैं स्वरूपानुभव है। यह ज्ञानाधिकार है।

॥ अब ज्ञेयाधिकार लिखिये ॥

"ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं" ज्ञेय जानवे योग्य पदार्थ

---

१ यह वाक्य मु० प्रतिमें नहीं है।

कौं कहिये। सो पदार्थ की तीन अवस्था हैं। द्रव्य अवस्था, गुण अवस्था और पर्याय अवस्था॥ द्रव्य अवस्था मुख्य है। काहेतैं? पदार्थ द्रव्य अवस्था न धरै तौ द्रव्य बिना गुण पर्यायका व्यापना न होय, तब द्रव्य न होय, तब पदार्थ न होय, तातैं द्रव्य अवस्था मुख्य है। पीछैं गुणअवस्था है। काहेतैं? गुण विना द्रव्य न होय। तातैं "गुणसमुदायो दव्वं" ऐसा जिन वचन है। पर्याय अवस्था न होय तौ वस्तुकौं परणावै कौन? उत्पाद व्यय ध्रौव्य न सधै, षड्गुणी वृद्धि-हानि न होय, तब अर्थ-पर्याय का अभाव भये, वस्तु का अभाव होय तातैं पर्याय अवस्थातैं सर्व सिद्धि है।

द्रव्य, गुण-पर्यायकौं व्यापै, गुण द्रव्य-पर्यायकौं व्यापै, पर्याय गुण-द्रव्यकौं व्यापै, तीनों अवस्था पदार्थ की हैं। पदार्थ सत्व अवस्था करि अस्ति है, पर चतुष्टय अवस्थातैं नास्ति है, गुण अवस्थातैं अनेक हैं, वस्तु अवस्थातैं एक हैं, गुणादि भेद करि भेद रूप हैं, अभेद वस्तु स्वरूप करि अभेद है, द्रव्य करि नित्य है, पर्याय करि अनित्य है, शुद्ध निश्चयतैं शुद्ध है, सामान्य विशेष रूप वस्तु वस्तुत्व है; द्रव्यके भावकौं धरै द्रव्यत्व है, प्रमेय के भावकौं धारैं प्रमेय रूप है, अगुरु लघुके

भावकौं धरै अगुरु लघु अवस्था है, प्रदेशकौं धरै प्रदेश रूप है, अन्यत्व गुण लक्षण भेद अन्य करि अन्यत्व है, स्व-पर करि अन्य है, नाना पदार्थतैं अन्य है , द्रव्यत्व है, पर्यायत्व है, सर्वगत असर्वगत अप्रदेशत्व है, मूर्त है, अमूर्त है, सक्रिय-अक्रिय, चेतन-अचेतन, कर्तृत्व-अकर्तृत्व, भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व, नाम उपलक्षण क्षेत्र, स्थिति, संथान सरूप फल द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, संज्ञा-संख्या-लक्षण-प्रयोजन-तत्स्वभाव, अतत्स्वभाव, सप्तभंग रूप अन्योन्यगुण करि सिद्धि, गति हेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाह हेतुत्व,-वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, मूर्तत्व आदि विशेष गुण पदार्थ सामान्य विशेष स्वभावकौं धरै हैं। नाना पदार्थ एक पदार्थ करि जैसी विवक्षा होय तैसी समझ लेणी ॥

पदार्थ सत्ता रूप है। सत्ता, महासत्ता[1] अवान्तर सत्ता[2] दोय भेद लिये है। सत्वं-असत्वं, त्रिलक्षणं-अत्रिलक्षणं एकत्वं-अनेकत्वं, सर्व पदार्थ स्थितत्वं-एक पदार्थ स्थितत्वं, विश्वरूपं-एकरूपं, अनंतपर्यायत्वं-एकपर्यायत्वं, द्रव्य ऐसा द्रव्य भाव सर्व द्रव्य मैं

१ समस्त पदार्थों के अस्तित्व गुण के ग्रहण करनेवाली सत्ता को महासत्ता कहते हैं।

२ किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को अवान्तर सत्ता कहते हैं।

महासत्ता जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य स्वरूप रूप वर्तै। अवांतर सत्ता, द्रव्य सत्ता, अनादि-अनन्त पर्याय सत्ता, सादि-सांत-स्वरूप सत्ता, तीन प्रकार, द्रव्य स्वरूप सत्ता, गुणसत्ता पर्यायसत्ता, गुणसत्ता का अनन्त भेद, ज्ञान सत्ता दरसनसत्ता अनंत-गुणसत्ता पृथक् भेद न छे (नहीं है), अनन्यत्व भेद छे। जेते कछु निजद्रव्यगुण परद्रव्य गुण हैं। जेतीक सब द्रव्यन की अतीत अनागत वर्तमान पर्याय तीन काल के नव पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सब ज्ञेय नाम आगममैं कह्या है। ज्ञानगोचर जो कछु होय, सो सब ज्ञेयनाम जानौं। "ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं" यह ज्ञेयाधिकार ज्ञेय जानि परकौं व्यंजन करै, अतः निज ज्ञेयकौं जानि स्वरूपानुभव करणां॥

॥ आगैं निजधर्माधिकार कहिये हैं ॥

निज धर्म वस्तु स्वभाव, सो आत्मा (का) निज धर्म, निर्विकार सम्यक् यथारूप अनंत गुण पर्याय स्वभाव सो धर्म कहिये। निश्चय ज्ञानदर्शनादि अपना धर्म है। जीव निज धर्म धरत ही परम शुद्ध है। निज कहिये आप, तिसका धर्म कहिये स्वभाव, सो निज धर्म कहिये। (प्रश्न) अपने स्व-

भाव रूप सब पदार्थ हैं। उनका धर्म उनका निज धर्म है। आत्मा का[1] आतमा मैं है। तातैं दर्शन ज्ञान हीकौं निजधर्म ऐसा मति कहौ ? ताका समाधान—स्वभाव तौ सब सब ही कहे हैं। उनका धर्म उनका स्वभाव यह तौ यौं ही है। परि तारणधर्म, सजीव धर्म, प्रकाश धर्म, उनके धर्मकौं प्रगटै। ऐसा धर्म, परम धर्म, हित रूप धर्म, असाधारण धर्म, अविनाशी सुखरूप धर्म, चेतनाप्राण धर्म, परमेश्वर धर्म, सर्वोपरि धर्म, अनंत गुण धर्म, शुद्ध स्वरूप-परिणति धर्म, महिमा अपार धारक धर्म, निज शुद्धात्म स्वभाव रूप धर्म, सो निज धर्म है। इनका विशेष भेद कहिये हैं ॥

यह अनादि संसार मैं जीव, कर्म योगतैं जन्मादि दुःख भोगवे है। इस पर-धर्मकौं, निज धर्म मानै हैं। तातैं दुःख पावे हैं। यह तौ सांच है। काहे तैं ? जो सिरदार, प्रधान पुरुष कौं निंद्य मैं गिणै सो दण्ड सहै। निंद्य देह मैं चेतन धर्म मानैं, सो दुःख पावै ही पावै। शुद्ध चैतन्य धर्मकौं जब धर्म जानै तब संसार तारण धर्म, अनन्त चेतना रूप धर्म, तातैं शुद्ध चैतन्य जीव धर्म, स्वज्ञेय परज्ञेय प्रकाशै यातैं प्रकाश धर्म, सब द्रव्यनि के धर्म यानैं प्रगट

१ यह वाक्य मु० प्रति में नहीं है।

किये उनके धर्मकौं प्रगटै ॥ सब तैं उत्तम यातैं परम धर्म, निजरूप तैं अनन्त सुख होय यातैं हित धर्म, और मैं न पाइये यातैं असाधारण धर्म, अविनाशी आनंद सहजरूप, तातैं अविनाशी सुखरूप धर्म, चेतनाप्राण धरै तातैं चेतना प्राण धर्म, परमेश्वर सहज रूप (है) ऐसे स्वभाव मय परमेश्वर धर्म, सबतैं उत्कृष्ट है तातै सर्वोपरि धर्म, अनन्त गुण है स्वभाव जाकौ तातैं अनन्त गुण धर्म, शुद्ध स्वरूप सदा परणमै शुद्ध भये तातैं शुद्ध स्वरूप परिणतिधर्म, अपार महिमाकौं-लिये तातैं अपार महिमा धारक धर्म, अनन्त शक्ति कौं धरै। अनन्त शक्ति रूप धर्म, अनंतपर्याय एक गुणकी, ऐसे अनंत गुण अनंत महिमा कौं धरै, सो निज धर्म की महिमा कहां लौ कहिये? एकोदेश निज धर्म धरैं हू संसार पार होय है। काहे तैं एकोदेश भये सर्वोदेश होय ही होय। तातैं जानि, यौं पर-धर्म तैं अनंत दुःख, निज धर्म तैं अनंत सुख ॥ यातैं निज धर्मकौं धारि अपना परमेश्वर पद प्रगट कीजे। निज धर्म की धारणा अनुभवतें होय। निज धर्म भये अनुभव होय। यातैं अनुभवसार सिद्धि निमित्त निज धर्म अधिकार कह्या ॥

आगे मिश्र धर्म अधिकार कहिये हैं।

सो मिश्र धर्म अन्तरात्माकै है, सो काहेतैं? सम्यक् स्वरूप श्रद्धान जेते कषाय अंश हैं तेते राग-द्वेष धारा हैं। आत्म-श्रद्धा भाव मैं आनंद होय है। कषाय सर्वथा न गई, मुख्य श्रद्धा भाव, गौण परभाव, एक अखण्ड चेतना भाव सर्वथा न भया, तातैं मिश्र भाव है। अज्ञान भाव बारमैं (गुणस्थान) तक एकोदेश अज्ञान चेतना है। अरु कर्मचेतना भी है! तातैं मिश्र धारा है। स्वरूप उपयोग मैं प्रतीति भई; परि शुभाशुभ कर्मकी धारा वहै है। तिनसौं रंजक भाव कर्म धारा में है। पर (परन्तु) श्रद्धान स्वरूप मुक्ति कारण है। भव बाधा मेटनेकौं समर्थ है। ऐसा कोई कर्म धाराका दुर्निवार आंटा है, (यद्यपि) प्रतीति मैं स्वरूप ठावा किया है। तौ हूं सर्वथा न्यारा न होय है, मिश्र रूप है। यहां कोई प्रश्न करे--कि, सम्यक् गुण सर्वथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि कै भया है वा न भया है? ताका समाधान कहौं—जो कहोगे, सर्वथा भया, तौ सिद्ध कहौ। काहेतैं? एक गुण सर्वथा विमल भये सब शुद्ध होय, सम्यक् गुण सब गुण मैं फैल्या है, सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सब गुण

सम्यक् भये। सर्वथा सम्यग्ज्ञान नहीं, एकोदेश सम्यग्ज्ञान है। सर्वथा ज्ञान सम्यक् होता तौ सर्वथा सम्यक् गुण शुद्ध होता, तातैं सर्वथा न कहिये। जो किंचित् सम्यक् गुण शुद्ध कहिये, तौ सम्यक्गुण का घातक मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी कर्म था सो तो न रह्यो। जिस गुण का आवरण जाय सो गुण शुद्ध होय। तातैं किंचित् हूं न बणै।

सो कैसैं हैं! सो समाधान करिये है सो आवरण तौ गया परि सब गुण सर्वथा सम्यक् न भये। आवरण गये तैं सम्यक् सब गुण सर्वथा न भये तातैं परम सम्यक् नाहीं। सब गुण साक्षात् सर्वथा शुद्ध सम्यक् होय तब परम सम्यक् ऐसा नाम होय॥ विवक्षा प्रमाण तैं कथन प्रमाण है। तिस (सम्यग्) दर्शन परि पौद्गलिक स्थिति जैसैं नाश भई, तब ही इस जीवका जो सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्व रूप परणम्या था, सोई सम्यक्गुण संपूर्ण स्वभाव रूप होय परणम्यां-प्रगट भया। चेतन अचेतन की जुदी प्रतीति सौं सम्यक्त गुण निज जाति स्वरूप होय परणम्या, तिसी का ज्ञान गुण अनंत शक्ति करि विकार रूप होय रह्या था, तिन गुण की अनंत शक्ति विषैं केतेक शक्ति प्रगट भई। ताका सामान्य सौं नाम मति श्रुति भयो कहिये।

अथवा निश्चय ज्ञान श्रुत पर्याय कहिये, जघन्य ज्ञान कहिये। अवर सर्व ज्ञान शक्ति रही, ते अज्ञान विकार रूप होय है। इन विकार शक्तिन कौं धर्म धारा रूप कहिये। तैसें ही जीवके दर्शनशक्ति अदर्शन रूप होयगी। तैसें ही जीवके चारित्र की केतेक चारित्र रूप केतेक अवर विकार रूप हैं। ऐसें भोग गुण की सब गुण जेतेक निरावरण सो शुद्ध। अवर विकार सो सर्व मिश्रभाव भया। प्रतीतिरूप ज्ञान मैं सर्व शुद्ध श्रद्धा भाव भया। परि आवरण ज्ञान का तथा और गुणका लग्या है। तातैं मिश्रभाव है. स्वसंवेदन है, परि सर्व प्रत्यक्ष नाहीं। सर्व कर्म अंश गये शुद्ध है। अघाति रहै शुद्ध है। घातिया नाशतैं परि सकल परमातमा[1] है। प्रत्यक्ष-ज्ञान तो भया है।

अर सिद्ध निकल सकल कर्म रहित परमात्मा[2] है। अन्तरात्मा के ज्ञान धारा कर्मधारा है। कोई प्रश्न करै—जो बारहमैं (गुणस्थान में) दोय धारा हैं कि एक ज्ञानधारा ही है? जो ज्ञान धारा ही है,

१ . ...तिन में घाति निवारी।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोका लोक निहारी॥
२ ज्ञान शरीरी त्रिविधि कर्ममल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता॥
—छहढाला, प० दौलतराम

तौ अन्तरात्मा मति कहौ। जो दोय धारा हैं तौ बारहमैं (गुणस्थान में) मोहक्षय भये राग द्वेष मोह सब गये, दूसरी कर्म धारा कहां रही ? ताका समाधान--ज्ञान परोक्ष है (कारण), केवलज्ञानावरण है, तातैं अज्ञान भाव बारमैं तक है। तातैं अन्तरात्मा है। प्रत्यक्ष ज्ञान बिना परमातमा नाहीं। कषाय गये, परि (परन्तु) अज्ञान भाव है। तातैं परमात्मा नाहीं, अन्तर (अन्तरात्मा) है, बारमैं में अज्ञान कहा ? ताका समाधान—केवलज्ञान बिना सकल पर्याय न भासै सो ही अज्ञान निज प्रत्यक्ष बिना हू अज्ञान है। तातैं अज्ञान संज्ञा भई। यह मिश्र अधिकार (कह्या)।

निश्चय-वस्तु स्वरूप

आगैं, निश्चय करि वस्तु का स्वरूप जैसा है, ताका कछु वर्णन कीजिये है--वस्तु निज अपना स्वरूप अनन्त गुणमय तिनमें दर्शन ज्ञान चारित्र प्रधान हैं। काहेतैं ? देखने-जानने परिणमन करि, वेदनतैं रसास्वाद अनुभव होय, तहां सुख समकित प्रगटै, तिन करि चेतना जानी गई, तब चेतन सत्ता, चेतन वस्तुत्व, चेतन द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व ये गाये (कहे)। तातैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जीव

वस्तुका सर्वस्व है। द्रव्य-गुण-पर्याय ये वस्तु की अवस्था हैं। अनादिनिधन वस्तु अखण्ड चेतना रूप वर्तै है। परि अनादि कर्म जोगतैं अशुद्ध होय रही है। सुख निधानकौं न जानैं है, तोऊ शुद्ध स्वरूप है।

जैसैं काहू नैं कोई एक ज्ञानवान पुरुष कौं पूछा— हमकौं शुद्ध चेतन की प्राप्ति बताओ ? तब ता पुरुष नैं कह्या-एक अमुका ज्ञानवान है ता पासि जाओ, तुमकौं वह बतावेगा, प्राप्ति करावेगा। तब वह गयौ। जाय, प्रश्न कियो—हमकूं चेतन की प्राप्ति कराओ। तब तासौं (उससे) कह्या, कि तुम, दरियाव में एक मच्छ रहै है, ता समीप जावो। तुमकौं वो मच्छ चैतन्य प्राप्ति करावेगा। तब वाके उपदेश सौं वह नर ता (उस) मच्छ समीप गयो, जाय प्रश्न कियो, हमकौं शुद्ध चैतन्य की प्राप्ति कराओ। तब मच्छने ऐसा वचन कह्यौ, हमारो एक काम है, सो पहलैं करो तो पीछैं तुमकौं चिदानन्द मैं लीन करैं। तुम बडे संत हौ, हमारो कार्य काहू नैं अब तक न कियो, तुम पराक्रमी दीसौ हौ। तातैं यह नियम है, हमारो काज किया, अवश्य तुमारौ काज करैंगे, ठीक जानौं। तब वो पुरुष बोल्यौ, तुमारो कारिज करूंगा, सन्देह नाहीं करौ। तब

मच्छ नें वासौं कह्यौ, हम बहुत दिनके तिसाये या दरियाव मैं रहैं हैं। हमारी तृषा न गई, पाणी कौ जोग न जुरयौ, कहूंसैं जतन करि जल ल्याओ, तुम बड़ौ उपकार करौ, हमारी तृषा मेटौ, महाजन की चाल (स्वभाव) है पर दुःख मेटै। तातैं यह उपकार करौ हम तुमकौं चिदानन्द प्रत्यक्ष दिखाय प्राप्ति कराएँगे॥

तब वो पुरुष बोल्यौ तुम ऐसैं काहे कहौ? जल समूह मांहि तुम सदा ही रहौ हौ, ऐसैं मति कहौ, जो जल लावो। दरियाव ओर देखौ, यह जल सौं प्रत्यक्ष भरयौ है। तब मच्छ बोल्यौ, ऐसैं तुम कहत हौ, सो यह बात तुम मानत हौ? तौ तुम चिदानन्द प्रत्यक्ष हौ, चेतना है, तो ऐसो विचार तुमनें कियो है। अब तुम हमकौं पूछण आये हौ, तातैं चिदानन्द हंस परमेश्वर तुमही हौ। संदेह त्यागौ थिर होइ। आपणौ चैतन्य स्वरूप अनुभवौ, परके अनादि जोग मैं हू आतमा जैसा का तैसा है, पर मैं अत्यन्त गुप्त भया है। तौऊ देखनें का स्वभाव न गया। ज्ञान भाव न गया। परिणाम (परिणमन पर जैसा) न भया। परके आवरणतैं आवरया, मलिन भया। परि निश्चय करि अखण्ड स्वरूप चिदानन्द अनादि का है, सो

ज्यौं का त्यौं बण्या है। कछु घट्या बढ्या नाहीं, (मात्र) भरम कल्पनानैं स्वरूप भूल्या है। परहीकौं आपा मान्या तौ कहा भयो?[1]

जैसैं कोई चिन्तामणि करविषैं (हाथ में) भूलि, काचखण्ड कौं रतन मानि चलावै तौ वह रतन न होय (और) चिन्तामणि कौं कांच न जानैं, तौ कांच न होय, चिंतामणि पणा न जाय। तैसैं आत्माकौं पर जानैं तौ पर न होय (और) परकौं आपा जानैं तौ आपा न होयं[2] वस्तु अपने स्वभाव का त्यजन काहू काल न करै। वस्तु वस्तुत्व कौं न तजै। अपने द्रव्यकौं न तजै। अपने प्रमाणकौं न तजै (तथा) अपने प्रदेशकौं न तजै। इत्यादि भावकौं न तजै। तातैं अनादि प्रदेश प्रमाणकौं न तजै ' शुद्ध अशुद्ध दोऊ अवस्था मैं

१ निहचैं निहारत ही आतमा अनादि सिद्ध आप निज भूल ही तैं भयो विवहारी है। ज्ञायक सकति यथा विधि सो तो गाप्य दई प्रगट अज्ञान भाव दशा विसतारी है ॥ अपनो न रूप जानैं और ही स्यौं और मानै ठानै बहु खेद निज रीति न सभारी है। ऐसे तो अनादि कहा कहा सिद्धि साधि अब नैकहू निहारौ निधि चेतना तुम्हारी है ॥ —ज्ञानदर्पण ४७

२ ज्ञान उपयोग योग जाकौ न वियोग होय निहचैं निहारै एक तिहू लोक भूप है। चेतना अनन्त चिद्रूप सामतौ विराजमान गति गति भ्रम्यौं तोऊ अमल अनूप है ॥ जैसैं मणि माहि कोउ काच खड मानै तोउ महिमा न जाय वामैं वाही को सरूप है। ऐसैं ही सभारिकैं सरूपको विचार्यौ मैं अनादि को अखण्ड मेरो चिदानन्द रूप है। — ज्ञानदर्पण ३०

अपनी द्रव्य क्षेत्रकाल भावकी दशा न तजै। (तेरी) महिमा अनन्त अमिट है (अर्थात्) काहू पै न मेटी जाय, निश्चयकरि जो है सो है! तातैं निज वस्तुका श्रद्धान ज्ञानादि अनंत गुण मात्र जानि अनंत सुख करै, तौ सुखी होय। उपाय तैं उपेय पाइये है। सो उपेय आनन्द घन परमात्मा परमेश्वर है। ताकौ उपाय यातैं करणौ, जु, संसार अवस्था मैं ही शरीर मैं कर्म बन्ध तैं गुप्त भयो-परभावना तैं दुःखी भयौ, अपनौं परमेश्वर पद न पायौ। ताकौ उपाय होय तौ उपेय पाइये, सो उपाय कहिये हैं--

उपाय अपने स्वरूप पावने का अपना उपयोग है। और उपाय तप-जप-संयमादि शुभ कर्म हैं। जिनमैं परमात्मा की भक्ति, शुभपरि प्रतीति नैं, कारण भी है। कारण, ध्यान नैं कार्य की सिद्धि हो है। ग्रन्थ उपदेश भी कारण है। परि (परन्तु) उपयोग आये शुद्ध हूवै। तातैं उपयोग की एकोदेश शुद्धता की चढ़नि ज्यौं ज्यौं होय त्यौं त्यौं मोक्ष मार्ग कौं चढ़ै॥ यह श्री जिनेन्द्र भगवान का निराबाध उपदेश है। सकल उपाधि अनादि तैं लगी आई (किन्तु) जब उपयोग करि समाधि लागै, (तब) साक्षात् शिवपन्थ सुगम होय। अनेक संत स्वरूप समाधि धरि धरि पार भये॥

अब कछुक समाधि वर्णन कीजिये है--

समाधिवर्णन ।

समाधि तौ प्रथम ध्यान भये होय है, सो ध्यान एकाग्र-चिन्तानिरोध भये होय है। सो चिन्तानिरोध राग-द्वेष के मिटे होय है। सो राग द्वेष इष्ट अनिष्ट समागम मिटे, मिटै है। तातैं जीव जे समाधिवांछक हैं, ते इष्ट अनिष्ट का समागम मेटि, राग-द्वेष त्यागि, चिंता मेटि, ध्यानमैं मन धरि, चिद् स्वरूप मैं समाधि लगाय, निजानन्द भेंटौ। स्वरूप मैं वीतरागता तैं ज्ञानभाव होय तब समाधि उपजै (और) वह अपने स्वरूपमैं मन लीन करै। द्रव्य-गुण-पर्यायमैं परिणाम लीन (होय), स्वसमय-समाधि ऐसी होय है॥

तब इन्द्रादि सम्पदाके भोग रोगवत् भासैं। द्रव्य*, द्रवणतैं नाम पाईये है। गुणकौं द्रवै (प्राप्त होवे) सो द्रव्यत्वलक्षण परिणाममैं, तातैं गुण (समुदायरूप) द्रव्यमैं परिणाम लीन होय। गुण द्रव्यमैं द्रव्यत्व लक्षण है। तौ परिणामसौं द्रव्य-गुण मिलि गये तातैं द्रव्यत्वकी एकोदेशता साधक कै ऐसी भई जो परीषह अनेक की वेदना न वेदै है। रसास्वाद मैं लीन आनंदरस तृप्त भया। जब

* गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्त इति द्रव्य "सर्वार्थसिद्धि".।

मन परमेश्वरमैं मिलै लीन होय न निकसै परमानन्द वेदै तब स्वरूप की धारणा होय।

निरन्तर जहां अचलज्योति का विलास अनुभवप्रकाशमैं भया, उपयोग में परिणाम लगे। ज्यौं ज्यौं दर्शनचेतना स्वरूप अनूप अखण्डित अनन्तगुण मण्डितकौं जानि रसास्वाद ले, त्यौं त्यौं पर विस्मरण होय, पर उपाधि की लीनता मिटै। समाधि प्रगटै। तब उत्कृष्ट सम्यक्प्रकार स्वरूप वेत्ता होय। ज्ञान ज्ञानकौं जानैं। ज्ञान दर्शनकौं जानै, ज्ञान सब गुणकौं जानैं। द्रव्यकौं जानैं, पर्यायकौं जानैं, एकोदेश भेद साधक ज्ञान जानैं। ज्ञान करि वस्तुको जानतें परम पद पावै। ताका-सा (उस जैसा) सुख परोक्ष ज्ञान ही में है। प्रत्यक्ष प्रतीतिमैं वेदै है। तहां आनन्द ऐसा होय है।

संप्रज्ञातसमाधि मैं दुःखादि वेदना प्रत्यक्ष भये हू न वेदै। विधान स्वरूप वेदनेका है। मन विकार जेते अंशकरि विलय गया तेती समाधिभई (और) सम्यग्ज्ञान करि जेता भेद वस्तु का गुणन करि जान्या तेता सुख-आनन्द बढ़्या। विश्राम भये, स्वरूप थिरता पाय, समाधि लागी, ज्ञान धारा निरावरण होय, ज्यौं ज्यौं निजतत्व जानै, त्यौं त्यौं विशुद्धता केवलकरि ज्ञान परिणति परम

पुरुषसौं मिल, निज महिमा प्रगट करै। तहां अपूर्व आनन्दभावका लखाव होय तब समाधि स्वरूप की कहिये॥

तहां अनादि अज्ञानका भ्रम भाव (जो) आकुलता मूल था सो मिट्या, अनात्म अभ्यास के अभाव तैं सहज पदका भाव भावत, भव वासना बिलावत, दरसावत परम पदका स्थान गुणका निधान, अमलान भगवान सकल पदार्थका जानन रूप ज्ञानकी प्रतीति प्रमाण भाव करि, नवनिधान आदि जगतका विधान झूंठा भास्या। तब प्रकाश्या आत्मभाव, लखाव आपके तैं कीना; तब चेतनभाव लीना, शुद्ध धारणा धरी, निज भावना करी, शिवपदकौं अनुसरी, आनन्द रससौं भरी, हरी[1] भवबाधा-अबाधा, जहां सदा मुदा (हर्ष) सेती एती शक्ती बढ़ाई, शिवसुखदाई, चिदानन्द अधिकाई (वह)ग्रन्थ ग्रन्थनमैं गाई, सो समाधितैं पाईये है।

यह[2] स्वरूपानन्द पद, भेदी समाधितैं होय है। वस्तु का स्वरूप गुणके जानैं तैं जानैं। गुण का पुंज वस्तुमय है। वस्तु अभेद है। भेद गुण-गुणी का, गुण करि भया। तातैं गुणका भेद, वस्तु अभेद जनावनैं कौं कारण है॥

१, २ मु० प्रतिमे यह शब्द नहीं है।

वितर्क कहिये—द्रव्यका शब्द ताका अर्थ भावना-भावश्रुत श्रुतमैं स्वरूप अनुभवकरण कथा। परमातम उपादेय कथा। ताही रूपभाव सो भावश्रुतरस पीव। अमरपद समाधि तैं है। विचार, अनादि भव भावन का नाश, चिदानन्द द्रव्य-गुण-पर्यायका विचार न्यारा जानि, दर्शन-ज्ञान वानिगीकौं पिछानि, चेतनमैं मग्न होता, ज्यौं ज्यौं उपयोग स्वरूप लक्षणकौं लक्ष्य रसस्वाद पीवै, सो स्वपर भेद विचारने (से) सारपद पाय समाधि लागी। अपार महिमा जाकी परमपद सो पाया। अनादि परइन्द्रिय जनित आनन्द मानै था, सो मिथ्या। ज्ञानानंद मैं समाधि भई, वस्तु वेदी, आनंद भया गुण वेदि आनन्द भया। परिणति विश्राम स्वरूप मैं लिया, तब आनन्द भया। एकोदेश–स्वरूपानन्द ऐसा है॥

जहां इन्द्रियविकार बल विलय भया है, मन विकार न होय, सुख अनाकुल रस रूप समाधि जागी है, "अहं ब्रह्म" "अहं अस्मि" ब्रह्म प्रतीति भावनमैं थिरता मैं समाधि भई; तहां आनन्द भया। सो केतेक काल लगु 'अहं' ऐसा भाव रहे, फिर समाधिमैं "अहंपणा' तौ छूटे, 'अस्मि' कहिये है, हूं ऐसा भाव रहै तहां दर्शन ज्ञान मय हौं, मैं समाधि लागैं हौं, ऐसा हू रहणा (भी) विकार है॥

इसके मिटें विशेष ऐसा होय जो द्रव्यश्रुत वितर्कपणा मिटी। एकत्व, स्वरूप में भया, एकता का रस रूप मन लीन भया, समाधि लागी, तहां विचार भेद मिथ्या, अनुभव वीतराग रूप स्वसंवेदन भाव भया। एकत्व चेतना मैं मन लागा, लीन भया। तहां इन्द्रियजनित आनन्दके अभाव तैं स्वभाव लखावका रसास्वाद करि आनन्द बढ़्या, तहां फिरि "अस्मि भाव" ज्ञान ज्योतिमैं था सो भी थक्या ॥

आगैं विवेकका स्वरूप, स्वरूप परिणति शुद्धी का ऐसा—जहां परमात्माका विलास नजीक भया, तहां अनंत गुणका रस (भया) फिरि परिणामवेदि समाधि लागी। निर्विकार धर्मका विलास प्रकाश भया। प्रतीति रागादि रहित भावनमैं, मनोविकार बहोत गया। तब आगैं अंश प्रज्ञात भया। तब परके जाननें में विस्मरणभाव आया। तब केवलज्ञान अतिशीघ्रकाल मैं पावै। परमात्मा होय लोकालोक लखावै। ऐसी अनुभवकी महिमा मन के विकार मिटैं होय है। सो मन विकार मोह के अभाव भयें मिटै है। सकल जीवकौं मोह महारिपु है। अनादि संसारी जीवकौं नचावै है। अरु चउरासी मैं संसारी जीव हर्ष मानि-मानि भव-

समुद्रमैं गिरैं हैं-परैं हैं (तो भी) आपाकौं धन्य मानै है। देखो धिठोंही भूलितैं कैसी पकरी है। नैक निज-निधि अनंत सुखदायककौं न संभारै है। यातैं इन ही जीवनकौं श्री गुरूपदेशामृत पान करने जोग्य है। इसतैं मोह मिटै (तथा) अनुभव प्रगटै सो कहिये--

प्रथम, श्री जिनेंद्र देव-आज्ञा प्रतीति करै, तहां पाछै भगवत् प्रणीत तत्व उपादेय विचारै (तब) चेतन प्रकाश अनंत सुखधाम, अमल अभिराम, आत्मा-राम, पररहित उपादेय है-पर हेय है। स्व-पर-भेदज्ञान का निरंतर अभ्यास तैं शुद्धचैतन्य तत्वकी लब्धि होय, तिहितैं राग-द्वेष-मोह मिटै। कर्म संवर होय तब कर्म मिटवे तैं निज ज्ञान तैं निर्जरा होय। तब सकल कर्मक्षय निज परिणाम हुवा भाव-मोक्ष होय। तब द्रव्य-मोक्ष होय ही होय। तातैं भेद-ज्ञान अभ्यासनैं परमपद सिद्ध (होय) सो भेद-ज्ञान उपजाने का विचार कहिये हैं ॥

ज्ञान भाव-जाननरूप-उपयोग विभावभाव अपनें जानै है। सो विभाव के जानने की शक्ति आत्मा आपणी जानै। जानि रूप परिणमन करै। ज्ञान रस पीवै विभावनकौं न्यारे न्यारे जानैं। विभाव सुधाधारा, ज्ञानरूप परिणाम सुधाधारा न्यारी [न्यारी] धारा दोन्यौं जानै। पुद्गल-अंश

आठकर्म-शरीर भिन्न है जड़ है। चेतन उपयोगमय है। इनमैं विवेचन करै। जुदा प्रतीति भाव करै, प्रत्यक्ष (शरीर) जड़ रहै। सदा जामैं चेतना प्रवेश न होय। चेतना जड़ न होय, यह प्रत्यक्ष सब ग्रन्थ कहैं सब जन कहैं। जिनवाणी विशेष करि कहै। अपने जान हूं मैं आवै। शरीर जड़ अनंते त्यागे। दर्शन-ज्ञान सदा साथ रहवो किया, सो अब भी देखनें जाननें वाला यह मेरा उपयोग सो ही मेरा स्वरूप है। तब उपयोगी अनुपयोगी विचारत, प्रतीति जड़ चेतन की आवै। विभाव कर्म-चेतना है। कर्म-राग द्वेष मोह-भाव कर्म तिस में चेतना परिणमै है। तब चिद्विकार होय। इस चिद्विकारकौं आप करि आपा मलिन किया है। केवलज्ञान-प्रकाश आत्माका विलास है। तिसकौं न संभारै है। मोहवशनैं ग्रन्थकौं सुणै है अरु जानै है। शरीर विनसैगा, परिवार, धन, तिया, पुत्र ये भी न रहैंगे, परि इनसौं हित करै। नरकबंध परै। अनंत दुःख कारणकौं सुख समझै॥

ऐसी अज्ञानता मोह वश करि है। तातैं ज्ञान प्रकाश मेरा उपयोग सदा मेरा स्वरूप है। सो सदा स्वभाव मेरा मैं हौं। कबहूं जिसका वियोग न होय, अनंत महिमा भण्डार, अविकार, सार-

सरूप, दुर्निवार मोह सौं रहित होय। अनुपम आनन्दघन की भावना करणी। अंश-अंश पर का, जड़ वा पर जीव, सब स्वरूपसौं भिन्न जानि, दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि अनंतगुणमय हमारा स्वरूप है। प्रतीतिमैं ऐसैं भाव करत पर न्यारा भासै, विभावरूप कर्ममल आपके भरम तैं भया, तिसतैं भरम मेटि, विभाव न होय, स्वभाव प्रगटै, अनादि अज्ञानतैं गुप्त ज्ञान भया। शुद्ध-अशुद्ध दोऊ दशा मैं ज्ञान शासती शक्ति कौं लिये चिद्विकार भाव-क्रोधादि रूप भये-होय सो ही भाव मेटि, निर्विकार सहज भाव आप आपमैं आचरण विश्राम थिरता परिणाम करि करै। जो बाह्य परिणाम उठै है सो अशुद्ध है, सो परिणामका करणहार अशुद्ध होय है। बाह्य विकारमैं न आवै। चेतना नांव उपयोगरूप अपनी इस ज्ञायक शक्ति कौं नीकै जानै तौ निज रूप ठाढा होय। प्रतीति चेतन उपयोग की करत-करत परमौं स्वामित्व मेटि-मेटि, स्वरूप रसास्वाद चढ़ता-चढ़ता जाय। तब शुद्ध उपयोग स्वरस-पूर्ण विस्तार पावै। तब कृतकृत्य निवसै। यह श्रीजिनेंद्र शासनमैं स्याद्वाद विद्या के बलतैं निज ज्ञान कलाकौं पाय अनाकुल पद अपना करै। इहां सब कहनें का तात्पर्य यह

है। जो पर की अपनायति (अपनापन) सर्वथा मेटि स्वरस-रसास्वाद रूप शुद्ध उपयोग करिये। राग-द्वेष विषम-व्याधि है सो मेटि-मेटि परमपद अमर होय, अतीन्द्रिय अखण्ड अतुल अनाकुल सुख आप पदमैं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि वेदिये। सकल संत-मुनिजन-पंचपरमगुरु स्वरूप-अनुभवकौं करै हैं। तातैं महान् जन जा पंथकौं पकरि पार भये सो ही अविनाशीपुर का पंथ ज्ञानी जननकौं पकरणा अनन्त कल्याण का मूल है। परिणाम चेतना-द्रव्य चेतनामैं लीन भये अचलपद ज्ञानज्योति का उद्योत होय है। एकोदेश उपयोग शुद्ध करि स्वरूपशक्ति कौं ज्ञान द्वार मैं जानन लक्षण करि जानै। लक्ष्य-लक्षणप्रकाश आपका आपमैं भासै। तब सहजधारावाही निजशक्ति व्यक्त करता-करता संपूर्ण व्यक्तता करै। तब यथावत् जैसा तत्व है तैसा प्रत्यक्ष लखावै। देखो कोई भगल विद्या करि कांकरेनकौं हरि[1] हीरा मोती दिखावै है। बुहारीके तृण कौं सर्प करि दिखावै है। तहां वस्तु लोकनकौं सांची दरसै। परि सांची नाहीं। तैसै पर मैं निज मांनि आपकौं सुख कल्पै सो सर्वथा झूठ है। सुख का प्रकाश परम-अखण्ड-चेतना के विलासमैं है।

१ गुजराती प्रति में इसकी जगह 'नील' शब्द है।

शुद्ध स्वरूप आप परमें खोजना करैं तब न पावै। बारबार विस्तार कहिणां इस वास्ते आवै है:— अनादि का अविद्या मैं पगि रह्या है, मोह की अत्यंत निबिड़ गांठि परी है, तातैं स्वपदकी भूलि भई है। भेदज्ञान अमृतरस पीवै, तब अनंतगुण धाम अभिराम आत्मारामकी अनंत शक्तिकी अनंत महिमा प्रगट करैं। यह सब कथन का मूल है। पर-परिणाम दुःख धाम जानि, मानि परकी मेटि, स्वरस सेवन करणां अरु निदान पर (लक्ष्य पर) दिष्टि कीजै। विनश्वर पर-दुःख (रूप) भूल का अनादि सेवन किया। तातैं जन्मादि दुःख भये। अब नरभवमैं संतसंगतैं तत्वविचार का कारण मिल्या, तौ फेरि कहा अनादि भव-संतानकी बाधा के करणहार परभाव सेइये ? यह जिसतैं अखंडित अनाकुल अविनाशी अनुपम अतुल आनन्द होय, सो भाव करिये। जो भाव मनोहर जानि मोह करैं हैं। अपने आत्माकौं झूठी अविद्या के विनोद करि ठगै है। सकल जगत चारित्र झूठ बन्या ही है, सो मोहतैं न जानै है। जो स्वरस सेवन (करे) तौ परप्रीति-रीति रंच हूं न धारै (और) अनन्त महिमा भाण्डारकौं ज्ञान चेतनामैं आपा अनुभवै। जो-जो उपयोग उठै सो मैं हों (हूं) ऐसा निश्चय भावनमैं

करै, वो तिरै ही तिरै। अनादि का विचार करै। अनादि का परमैं आपा जानि दुःख सह्या। अब श्री गुरुनैं ऐसा उपदेश कह्या है[1]। तिसकौं सत्य करि मानते ही श्रद्धानैं मुक्तिका नाथ होय है। तातैं धन्य सद्गुरु! जिनौंने भव गर्भ-में-सौं काढने का उपाय दिखाया। तातैं श्री गुरुका-सा उपकारी कोई नाहीं, ऐसैं जानि श्रीगुरुके वचन प्रतीतितैं पार होना॥

जेता अनुराग विषयनमैं करै है, मित्र पुत्र भार्या धन शरीरमैं करै है, तेता रुचि श्रद्धा प्रतीति भाव स्वरूपमैं, तथा पंचपरम गुरुमैं करै, तौ मुक्ति अति सुगम होय[2]। पंच परम गुरु राग भी ऐसा है, जैसा संध्याका राग सूर्य अस्तता का कारण है, प्रभात की संध्या की ललाई सूर्य उदयकौं करै है। तातैं विविध[3] परम गुरु बिना, शरीरादि राग केवलज्ञान की अस्तता कौं कारण है (और) पंच परमगुरु का राग, केवलज्ञान उदयकौं कारण है। तातैं विशेष करि परम धर्मका

---

१ भैया जगवासी तू उदासी ह्वै कैं जगतसौं, एक छ महीना उपदेश मेरो मानु रे। और सकलप विकलप के विकार तजि, बैठिकैं एकन्त मन एक ठौर आनु रे। तेरो घट सर तामैं तू ही है कमल ताकौ, तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे। प्रापति न ह्वै है कछु ऐसौ तू विचारतु है, सही ह्वै है प्रापति सरूप यौं ही जानु रे॥ ३॥ समयसार नाटक, अजीवद्वार

२ जैसी भक्ति हराम में तैसी जिनमें होय। भेद ज्ञानतैं सहज लहि परमातम पद सोय॥

३ पंच प्रकार के

अनुभव-राग, परमसुखदायक है। अर्थ (लक्ष्मी) अनंत अनर्थ कौं करै; सो किसही अर्थि नहीं; अर्थ सो ही, जो परमार्थ साधै। तिस करि काम, सौं किस काम? निज कामना सैं काम सो ही सुकाम सुधारै। मिथ्या-रूपधर्म अनन्त संसार करै, सो धर्म कहा? सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय निज धर्म, व्यवहार रत्नत्रय रूप कारण। मोक्ष सो ही फेरि कर्म न बन्धै, (इस लिये) ऐसा विचारणा-जैसैं दीपक मन्दिर मैं धरैं तैं प्रकाश होय तौ सब सूझै, तैसैं ज्ञानी कौं ज्ञान प्रकाशसौं सब सूझै॥

कैसें? ज्ञान करि विचारै, शरीरमैं चेतन है दिष्टि (दृष्टि) द्वार करि देखै है। ज्ञान द्वार करि जानै है। अपने उपयोग करि आप चेतन हौं। आप ऐसैं जाने, देह मैं देह कौं देखनेहारा मेरा स्वरूप चेतन रूप है[1]। तौ जड़कौं चलावै हलावै है, चेतन प्रेरक है। अचेतन अनुपयोगी जड़ न देखै न जानै, यह तौ प्रसिद्ध है। जो शरीर देखै-जानै तौ, (जब) गत्यन्तर जीव होय, तब शरीर क्यों न देखै? तातैं यह देखनें जाननें करि आपा चेतन रूप, प्रत्यक्ष ठावा (निश्चय) करि स्वरूपकौं चेतन मांनि, अचेतन का अभिमान तजना मोक्ष का मूल है।

---

१ यह कथन निमित्त का है।

शरीर वासना का त्यागी आपा स्वरूप अवगाढ़ चेतन स्वरूप करि भावना। ऊजड़ कौं वस्ती मानै है, चेतन वस्ती कौं ऊजड़ मानै है। ऐसी भूलि मेटि, तेरी चेतना वस्ती शाश्वत है। जहां बसै तौ अपना अनन्त गुण निधान न मुसावै (लुटावे)। निज धन का धणी परम साहू होय। तब अनन्त सुख-व्यापार मैं अविनाशी नफा होय। अनादि परमैं आपा मान्या, परकौं ग्रहण करते-करते पर वस्तु का चोर भया, जग मांहि दुःख दण्ड भोगवै है। विवेक राजा का अमल (शासन) होय (और) पर-ग्रहण रूप चोरी मिटै, तब आप साहू पद धरि सुखी होय। तब निज परिणति रमणी करि अपना निज घर थिर करै। अनादि अथिर पदका प्रवेश था, ताकौं त्यागि अखण्ड अविनाशी पदकौं पहुंचै। यह साक्षात् शिव मार्ग स्वरूपकौं अनुभव-यह शिव पद स्वरूपकौं अनुभव, त्रिभुवनसार अनुभव, अनुभव अनंत कल्याण, अनुभव महिमा भण्डार, अनुभव अतुल बोध फल, अनुभव स्वरस रस, अनुभव स्वसंवेदन, अनुभव तृप्ति भाव, अनुभव अखण्ड पद सर्वस्व, अनुभव रसास्वाद, अनुभव विमल रूप, अनुभव अचल ज्योति रूप प्रगट करण, अनुभव-अनुभवके रस मैं अनंत गुणकार रस है, पंच

परम गुरु अनुभवतैं भये होंहिंगे[1]। अनुभवसौं लगेंगे सकल संत महंत भगवंत। तातैं जे गुणवन्त हैं, ते अनुभव कौं करौ। सकल जीव राशि, स्वरूपकौं अनुभवौ। यह अनुभव-पंथ निरग्रन्थ साधि-साधि भगवंत भये ॥

परिग्रहवंत सम्यग्दृष्टि हू अनुभवकौं कबहूं-कबहूं करै हैं, तेहू धन्य हैं। मुक्ति के साधक हैं। जा समय स्वरूप-अनुभव करै है, ता समय सिद्ध समान अमलान आत्मतत्त्व कौं अनुभवै है। एको-देश स्वरूप अनुभवमैं स्वरूप अनुभव की सर्वस्व जाति पहिचानी है। अनुभव पूज्य है, परम है, धर्म है, सार है, अपार है, करत उद्धार है, अवि-कार है, करै भवपार है, महिमाको धारै है। दोष को हरणहार है। यातैं चिदानन्दको सुधार है ॥

सवैया।

देव जिनेन्द्र मुनीन्द्र सबै अनुभौ रस पीयकै आनन्द पायौ।
केवलज्ञान विराजत है नित सो अनुभौ रस सिद्ध लखायौ ॥

---

१ गुण अनन्त के रस सबै अनुभव-रसके माहिं।
यातैं अनुभौ सारिखौ और दूसरौ नाहि ॥ १५३ ॥
पंच परम गुरु जे भये जे होंगे जग माहि।
ते अनुभौ परसादतैं यामैं धोखौ नाहि ॥ १५४ ॥
—ज्ञान-दर्पण।

एक निरंजन ज्ञायक रूप अनूप अखण्ड स्व-स्वाद सुहायौ ।
ते धनि हैं जग माहिं सदैव सदा अनुभौ निज आपकौ भायौ ॥१॥

अडिल्ल ।

यह 'अनुभव-प्रकाश' ज्ञान निज दाय है ।
करि याकौ अभ्यास संत सुख पाय है ॥
यामैं अर्थ अनूप सदा भवि सरदहै ।
कहै "दीप" अविकार आप पदकौं लहैं ॥ १ ॥

इति श्री दीपचन्द साधर्मी कृत अनुभव प्रकाश नाम ग्रन्थ संपूर्णम् ।